अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष-41, अंक-22, 1-15 जुलाई, 2018

'सविनयभंग जल्द असर करने वाला शस्त्र है। हरएक उसे इस्तेमाल नहीं कर सकता। उसके लिए तालीम चाहिए। हृदय बल चाहिए। मगर असहयोग का प्रयोग हर एक कर सकता है।'

'न' करना सीखना। ...हमारी इच्छा के विरुद्ध कोई हमसे कुछ भी करा नहीं सकता। हमारी इच्छा के विरुद्ध कोई हमें गुलाम रख नहीं सकता।'

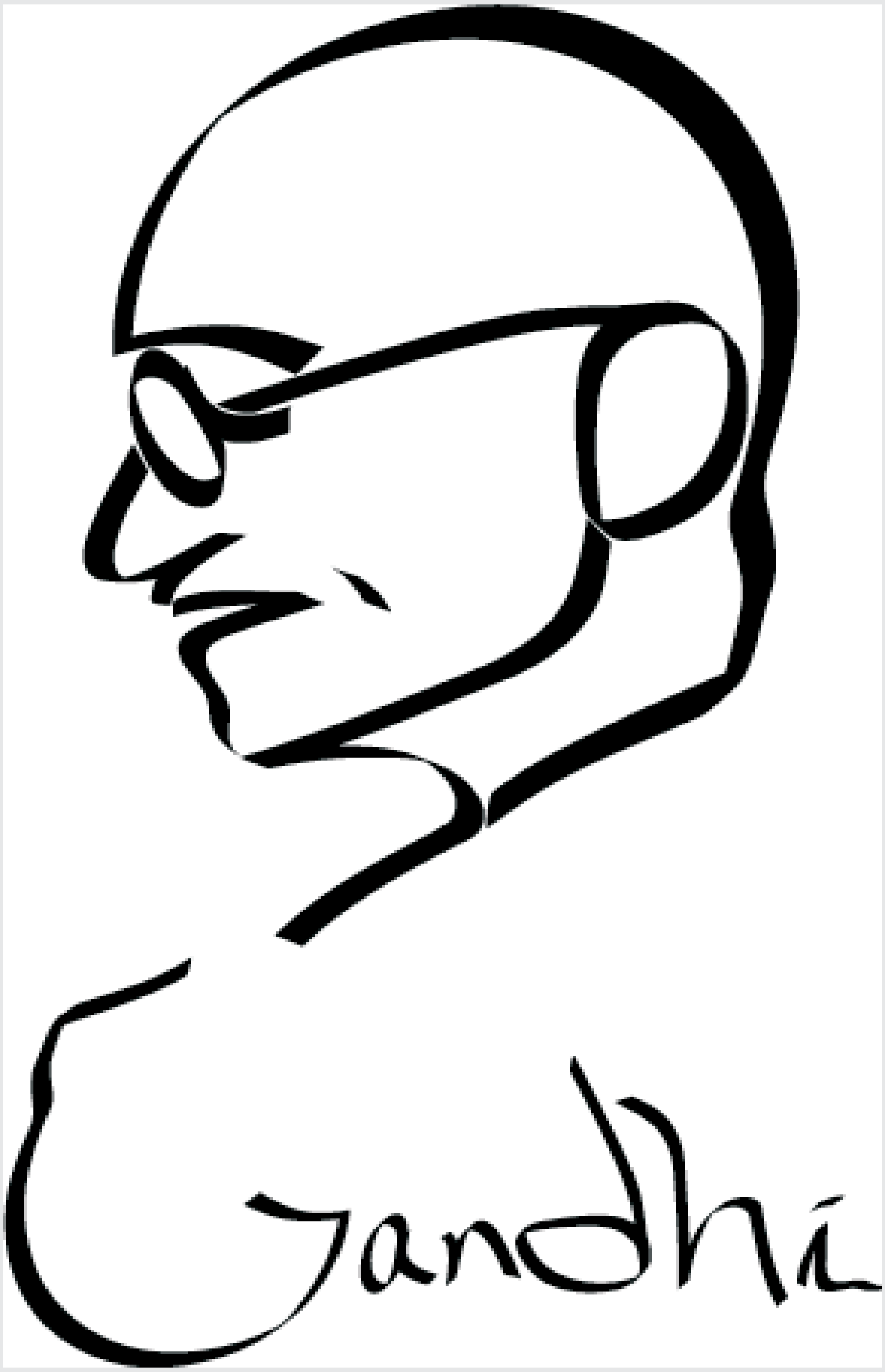

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत
सत्य, अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक

वर्ष : 41, अंक : 22, 1-15 जुलाई, 2018

संपादक
अशोक मोती
फोन : 0542-2440223

संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह भवानी शंकर 'कुसुम'

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ, साधना केन्द्र
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क
मूल्य : 05 रुपये
वार्षिक : 100 रुपये
आजीवन : 1000 रुपये
खाता संख्या : 383502010004310
IFSC No. UBIN-0538353
Union Bank of India
Rajghat, Varanasi

इस अंक में...

1. संकट लोकतंत्र से अधिक लोक का... 2
2. काचो पारो खावो अन्न, तेवुं छे चोरी... 3
3. गांधीजी और आज का भारत... 5
4. माल्थस का सिद्धांत और वर्तमान... 7
5. ग्राम स्वराज... 8
6. काका साहेब के नचिकेताः रवीन्द्र... 14
7. उपन्यास - 'बा' 18
8. बिहार के गांधी लक्ष्मी बाबू... 19
9. कविताएं... 20

संपादकीय

संकट लोकतंत्र से अधिक लोक का दर्जा गिरते जाने का है

लोकतंत्र का सरल अर्थ है—लोगों का, लोगों के द्वारा और लोगों के लिए जो तंत्र कार्य करे। इस परिभाषा की स्वाभाविक अंतरध्वनि लोकहित, लोकमत और लोक-सहभागिता की है। लोकमान्य से लोकनायक तक सबों ने लोकतंत्र को इसी रूप में देखा और इसके द्वारा सामाजिक परिवर्तन के साथ ही लोगों की खुशहाली एवं स्वतंत्रता अक्षुण्ण रखने की कल्पना की।

डॉ. लोहिया ने इसे चौखंबा राज कहते हुए इसके चार खंभे गिनाये—न्यायपालिका, कार्यपालिका, विधायिका और प्रेस। ऐसे लोकतंत्र में 'सुशासन' की कल्पना भी बेइमानी है—जिसे हमारे महापुरुषों ने 'स्वशासन' यानी जनता का शासन कहा। किन्तु आज लोकतंत्र ढोंग-सा लगता है। लोकतंत्र के लोक का लोप हो चुका है और तंत्र काबिज है। इसलिए संकट लोकतंत्र से अधिक लोकतंत्र में लोक का दिन-ब-दिन एक दर्जा नीचे गिरते जाने का है।

गांधी ने आजादी के बाद सामाजिक परिवर्तन के अपने संघर्ष की रूपरेखा स्पष्ट करते हुए इसीलिए 'कांग्रेस' को भंग कर लोकसेवक संघ के निर्माण पर बल दिया। गांधी पहला व्यक्ति थे, जिनका ध्यान इस ओर गया था कि इस देश को अब एक सामाजिक-राजनीतिक ऐसे संगठन की जरूरत है, जो जनता को शिक्षित और संगठित कर सके। गांधी की आकांक्षा लोकतांत्रिक व्यवस्था में विश्वास करने वालों में एक विशिष्ट चरित्र के निर्माण की थी। गांधीजी सवा सौ साल जीना चाहते थे ताकि देश से भूख, अशिक्षा, अज्ञानता, जातीयता और अस्पृश्यता, समाज में पुरुषों का वर्चस्व, नारी की गुलामी, साम्प्रदायिकता तथा एक-दूसरे के प्रति उत्पन्न नफरत को समाप्त कर देश को रचनात्मक विकास की ओर ले जाया जा सके। उन्होंने सही रूप में हिन्दुस्तान के दर्द को पहचाना था और हिन्दुस्तान के सात लाख देहातों के विस्तृत सत्यानाश की चिन्ता की थी। गांधी ने मनोदशा में ही 'भारतीय इलाज' अजमाकर दक्षिण अफ्रीका में दुनिया को दिखाया। गांधी जानते थे कि भारत की प्राचीन सभ्यता में भी लोकोत्तर तेज है, जिसके बल पर वे पश्चिम का मुकाबला कर सकते हैं। इसलिए वे ब्रिटिश जैसी शक्तिशाली सरकार से मुकाबला करने में भारतीय सभ्यता, धर्मनिष्ठा और आत्मशक्ति की बात करते थे, जिसे उन्होंने 'हिन्द स्वराज' के रूप में अपनी पवित्र व्यूहरचना देश के सामने रखी।

अब हम देख लें कि गांधी की इस चिन्ता को सत्तासीन सरकारों द्वारा दूर करने के क्या प्रयास हुए? कहां गया गांधी का स्वशासन? कांग्रेस की प्रथम सरकार से लेकर अभी तक की सत्तासीन हुई सरकारों में हमने यही देखा है कि लोकतंत्र में लोक कैसे हाशिये पर धकेल दिये गये हैं और व्यवस्था किस तरह जन-विरोधी बनती गयी है। जन प्रतिनिधियों के बदले दल-बदल, सत्तावादी पूंजीवाद के प्रतिनिधि, भ्रष्ट नौकरशाही संपूर्ण प्रशासनिक, राजनैतिक व आर्थिक जिम्मेवारियों पर हॉवी हो गयी है।

सत्ताकामी किसी भी सीमा तक जा सकते हैं। लोकतंत्र का क्षय तब और हुआ, जब राजनीतिक दलों का एकमात्र मकसद ऐन-केन-प्रकारेण सत्ता प्राप्त करना बन गया। धन-बल, जाति और सम्प्रदाय की राजनीति कर दलों ने अपने वोट बैंक सुनिश्चित करने को ही अपना परम लक्ष्य बना डाला। दलगत राजनीति में लोकशक्ति की कल्पना निर्मूल

साबित हो रही है क्योंकि राजनैतिक दलों को लोकशक्ति की आवश्यकता नहीं है। दलगत राजनीति लोकशक्ति की बजाय धन-बल आधारित न्यूसेंस वैल्यू से जुड़ जाती है, उपद्रव की क्षमता से उसे लोकमत खरीद-फरोख्त कर पाना संभव हो जाता है। ऐसी ही स्थिति में 1974 आंदोलन में जेपी को लोकमत और लोकशक्ति के महत्त्व को समझाने की जरूरत पड़ी; जब देश में आपातकाल लगाकर जन-असंतोष को दबाने की कोशिश हुई। जेपी ने प्रत्यक्ष सहभागिता वाली लोकतांत्रिक व्यवस्था की कल्पना की, क्योंकि लोगों की प्रत्यक्ष सहभागिता के बिना संसदीय लोकतंत्र के जो चार स्तम्भ हैं, वे मात्र औपचारिकता निभाने वाले ही रह जाते हैं, इन्हें लोकशक्ति का स्पर्श नहीं हो पाता। इसीलिए चौथे स्तम्भ प्रेस द्वारा स्पर्श होने का भ्रम पैदा किया जाता है, जो वर्तमान में दिख रहा है। चौथा स्तम्भ इस लोकतंत्र को पुष्ट करने के बजाय अपना व्यावसायिक स्वार्थ साधने और अपने आपको लोकतांत्रिक व्यवस्था का भ्रम और भय पैदा करने का एक साधन बना लिया है। विरोध और असहमति के स्वर हिंसा के शिकार हो रहे हैं। सोशल मीडिया में भी अभिव्यक्ति की आजादी का हनन हो रहा है।

गांधी मानते थे कि समाज में भय की समाप्ति तभी होगी, जब कोई किसी से डरे नहीं और किसी को डराये भी नहीं। इसलिए अपने विचार की अभिव्यक्ति के लिए हमें निडर तो बनना ही चाहिए साथ ही औपचारिक संसदीय लोकतंत्र के लिए वास्तविक लोकतंत्र का विकल्प जो प्रत्यक्ष सहभागी लोकतंत्र हो सकता है, की ओर बढ़ने के साथ-साथ हर नागरिक को जागरूक बनाने का काम करना चाहिए। गांधी ने निरीह भारतीय जनता को असहयोग का अचूक हथियार तो दिया ही है।

–अशोक मोती

काचो पारो खावो अन्न, तेवुं छे चोरी नुं धन

❑ **गांधी**

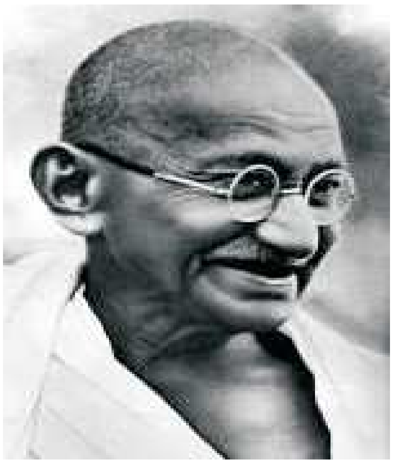

छात्रालय की मेरी कल्पना यह है कि छात्रालय एक कुटुम्ब की तरह हो, उसमें रहने वाले गृहपति और छात्र कुटुम्बियों की तरह रहते हों, गृहपति छात्रों के माता और पिता दोनों के स्थान की पूर्ति करें। यदि गृहपति के साथ उसकी पत्नी भी हो, तो पति-पत्नी दोनों मिलकर, माता-पिता की तरह बरतें। आज तो हमारे यहां स्थिति करुणाजनक हो रही है। गृहपति ब्रह्मचर्य का पालन न करता हो, तो उसकी पत्नी छात्रालय में मां का स्थान हरगिज नहीं ले सकती। उसे शायद पति का छात्रालय में काम करना ही पसंद न आये और शायद आये तो इसीलिए कि बदले में रुपये मिलते हैं। वह छात्रालय में से थोड़ा घी चुरा लाये, तो भी पत्नी खुश होगी कि चलो, मेरे बच्चों को ज्यादा घी खाने को मिलेगा। मेरे कहने का मतलब यह नहीं है कि गृहपति ऐसे ही होते हैं, बल्कि यह है कि आज हमारे सारे कामकाज इसी तरह की अस्त-व्यस्त हालत में हैं।

मेरी कल्पना के छात्रालय आज गुजरात में या भारत में विरल ही होंगे। काफी हों तो मुझे उनके बारे में मालूम नहीं है। गुजरात के बाहर तो हिन्दुस्तान में ये संस्थाएं वैसे भी बहुत कम हैं। छात्रालय की संस्था गुजरात की खास देन है। इसके कई कारण हैं। गुजरात व्यापारियों का प्रदेश है। जो व्यापार से धन कमाते हैं, उन्हें शौक होता है कि अपनी जाति के बच्चों के लिए छात्रालय खोलें। 'छात्रालय' जैसा बड़ा नाम तो बाद में पड़ा। उन बेचारों ने तो 'बोर्डिंग' ही कहा था। बाद में जब इन बोर्डिंगों में संस्कारवान गृहपति आये, तब उन्होंने इनमें भावना का समावेश प्रारंभ किया।

मैं स्वयं विद्यालय से छात्रालय को ज्यादा महत्त्व देता हूं। ऐसी बहुत-सी बातें, जो स्कूल में नहीं सीखी जा सकती, छात्रालय में सीखी जा सकती हैं। शालाओं में थोड़ा-बहुत बौद्धिक शिक्षण भले ही दिया जाता हो, किन्तु वहां जो-कुछ पढ़ाया जाता है, विद्यार्थी उसे भी आत्मसात नहीं कर पाते। बस इतना ही होता है कि इच्छा न रहते हुए भी थोड़ी-बहुत बातें दिमाग में रह जाती हैं। यहां मैं विद्यालयों का अंधकारमय पक्ष ही सामने रख रहा हूं। लड़कों और लड़कियों का छात्रालय में जैसा विकास किया जा सकता है, उतना केवल विद्यालय में नहीं हो सकता। मेरी आखिरी कल्पना तो यह है कि छात्रालय ही विद्यालय हो।

सेठों ने जो छात्रालय खोले, वे दूसरी ही तरह के थे। वे स्वयं छात्रालय खोलकर दूर रहे। गृहपति भी इतने से ही अपना काम पूरा हुआ समझ लेता था कि लड़के खा-पीकर स्कूल-कॉलेज चले जायें। सेठों और गृहपतियों दोनों ने दिलचस्पी ली होती, तो छात्रालय आज जैसे न रहते। अब हमें परिस्थिति को देखकर यह सोच लेना है कि उन्हें किस तरह सुधारा जा सकता है। यदि हम इरादा कर लें तो इन संस्थाओं की शक्ल बहुत-कुछ बदल सकते हैं। जो बात स्कूलों में नहीं की जा सकती, वह छात्रालयों में संभव है। गृहपति सिर्फ हिसाब रखने वाला ही न रहे, बल्कि इसकी भी जांच करे कि विद्यार्थी स्कूल में जाकर क्या सीखता है। वह विद्यार्थी को, पुत्र या अपना शिष्य मानकर, उसके विषय में ध्यान रखे। आज तो बहुत-सी जगहों का ऐसा हाल है कि गृहपति को यह भी पता नहीं रहता कि विद्यार्थी क्या खाते-पीते हैं।

छात्रालयों में जो एक गंभीर अराजकता फैली हुई है, उसकी तरफ मैं खास तौर पर ध्यान खींचना चाहता हूं। इस चीज की हमेशा उपेक्षा की जाती है। यह समझकर कि हमारे छात्रालय की बदनामी होगी, गृहपति लोग उसे जाहिर करते हैं, वह खुल जायेगा। अतः वे माता-पिता को भी इसकी खबर नहीं देते।

किन्तु इस तरह भी बात नहीं छिपती। गृहपति अपने मन में यह समझते होंगे कि कोई नहीं जानता, किन्तु बदबू तो देखते-देखते फैल जाती है। अनुभवी गृहपति समझ गये होंगे कि मैं क्या कहना चाहता हूं। गृहपतियों को मैं इस बारे में चेतावनी देता हूं। वे सावधान रहें, अपना धर्म अच्छी तरह समझें। जो छात्रालय को शुद्ध न रख सकें, वे इस्तीफा देकर, इस काम से अलग हो जायें। यदि छात्रालय में रहकर लड़के निकम्मे बनें, उनमें दृढ़ता न रहे, उनके विचार तितर-बितर हो जायें, बुद्धि के स्रोत सूख जायें, तो इस सबसे गृहपति की अयोग्यता सूचित होती है।

मैं जो कहता हूं उसकी बहुत-सी मिसालें दे सकता हूं। मेरे पास विद्यार्थियों के ढेरों पत्र आते हैं। बहुत-से गुमनाम होते हैं और उन्हें मैं रद्दी की टोकरी में डाल देता हूं, किन्तु उनका सार समझ लेता हूं। बहुत से भोले-भाले विद्यार्थी अपना नाम-पता देकर मुझसे उपाय पूछते हैं। जब कुटेव नई-नई पड़ती है, तब गृहपति की तरफ से, उन्हें उसे छोड़ने में, सहारा नहीं मिलता, उलटे कभी-कभी उस दिशा में उत्तेजन ही मिलता है। फिर जब उनकी आंखें खुलती हैं, तब उनकी दृढ़ता नष्ट हो चुकी होती है, मन पर काबू नहीं रह जाता और मुझ-जैसा कोई व्यक्ति सलाह दे तो उस पर चलने की शक्ति नहीं रह जाती।

गृहपति का काम करने में समर्थ व्यक्ति वेतन बहुत मांगते हैं। वे कहते हैं कि हमें अपनी विधवा बहनों की परवरिश करनी पड़ती है, लड़के-लड़कियों के शादी-ब्याह में खर्च करना पड़ता है। इस तरह के गृहपति योग्य हों, तो भी हमें उन्हें छोड़ना पड़ेगा। कुछ गृहपति ऐसे भी होते हैं, जो यह मानते हैं कि हमारा तो काम ही यह है। उन्हें दूसरा काम पसंद ही नहीं आता। कुछ ऐसे लोग भी मिलते हैं, जो गुजारे के योग्य लेकर काम करने को तैयार रहते हैं।

मैं जो कहता हूं, उससे स्पष्ट होगा कि गृहपति को लगभग निर्दोष पुरुष होना चाहिए। जो व्यक्ति विद्यार्थियों पर असर डाल सके, उनके मन में जगह बना सके, वही गृहपति बन सकता है। ऐसा गृहपति न मिले तो लड़कों को इकट्ठा करना भयंकर काम है।

यह तो गृहपतियों की बात हुई। अब छात्रों से दो शब्द। छात्र अज्ञानवश गृहपति को नौकर मान लें और यह सोचने लगें कि उनका सब काम नौकर ही करेंगे और वे स्वयं हाथ से कुछ नहीं करेंगे, तो यह उनकी भूल होगी। छात्रों को जानना चाहिए कि छात्रालय उनके ऐश-आराम के लिए नहीं है। वे यह न सोचें कि छात्रालय को वे रुपया देते हैं। वे जो-कुछ देते हैं, उससे ही खर्च पूरा नहीं हो जाता। छात्रालय खोलने वाले सेठ गलती करके यह मान लेते हैं कि विद्यार्थी लाड़-प्यार से रखने से अच्छे बनते हैं और उन्हें आराम देना धर्म है। इस समझ के कारण वे विद्यार्थियों को सहूलियतें देते हैं, किन्तु इससे अकसर धर्म के बजाय पाप पल्ले पड़ता है। इससे विद्यार्थी, उलटे बिगड़ते हैं और परावलंबी बनते हैं। जो विद्यार्थी बुद्धि से काम लेता है, वह यह हिसाब लगा लेगा कि छात्रालय के जिस मकान में वह रहता है, उसका किराया कितना है, नौकर-चाकरों और गृहपति की तनख्वाह कितनी है? यह सब छात्रों से नहीं लिया जाता। वे तो सिर्फ खाने का खर्च देते हैं। बहुत-से छात्रालयों में तो खाना, कपड़ा, पुस्तकें वगैरह मुफ्त दी जाती हैं। दान देने वाले लोग यह लिखा लेते हों कि पढ़-लिखकर ये लड़के देश-सेवा करेंगे तो भी ठीक है, परंतु वे इतने उदार होते हैं कि ऐसा भी कुछ नहीं करते। परंतु छात्रों को समझ लेना चाहिए कि वे जो खाते हैं, उसका बदला नहीं देंगे, तो कहा जायेगा कि चोरी का धन खाते हैं। बचपन में मैंने अखा भगत की कविता पढ़ी थी : *'काचो पारो खावो अन्न, तेवुं छे चोरी नुं धन।'*

चोरी का माल खाने से छात्र वीर नहीं बनते हैं। तब छात्र यह निश्चय करें कि हम भीख का अन्न नहीं खायेंगे। वे छात्रालय की सुविधाओं का फायदा भले ही उठायें, किन्तु इस सम्मेलन से लौटकर वे तत्काल गृहपति से, सारे नौकरों को विदा कर देने की प्रार्थना करें। या नौकरों पर दया का भाव हो तो उनकी नौकरी रहने दें, किन्तु अपना सारा काम तो स्वयं ही करें। पाखाना साफ करने तक सारे काम अपने ही हाथों से कर लेने का निश्चय करें। तभी आगे चलकर वे अच्छे गृहस्थ बन सकेंगे, देश की सेवा कर सकेंगे। आज तो हमारे लोग ईमानदारी के धंधे से अपना, स्त्री का या मां का, गुजारा करने की भी ताकत नहीं रखते।

यदि कोई कहीं नौकरी मिलने पर यह घमंड करता हो कि मैं ईमानदारी का धंधा करता हूं, तो उसे यह विचार भी करना चाहिए कि मिल में गुमाश्ते का काम करने पर मुझे 75 रुपये मिलते हैं और वहीं उस मजदूर को बड़े कुनबे वाला होने पर भी सिर्फ 12 रुपये मिलते हैं। ऐसा क्यों? यदि वह यह सोचेगा तो फौरन समझ जायेगा कि बड़ी तनख्वाह लेना योग्य नहीं है, यह रोजी ईमानदारी की नहीं है और शहरों में हम सब चोरी का ही अन्न खाते हैं। हम तो डाकुओं के एक बड़े जत्थे के कमीशन एजेंट हैं। लोगों से हम जो-कुछ लेते हैं, उसका 95 फीसदी भाग विलायत भेज देते हैं। ऐसा काम करके कमाना भी न कमाने के बराबर है। मैंने आज जो कुछ कहा है, उस पर विश्वास हो तो आप, आज से ही उसपर अमल करने लगें।

छात्रालय को तो ऋषिकाल होना चाहिए। वहां सब ब्रह्मचारी ही रहने चाहिए। जो ब्याहे हुए हों वे भी, वानप्रस्थ धर्म का पालन करें। यदि आप ऐसी आदर्श स्थिति में दस-पांच साल रहें, तो आप इतने समर्थ बन सकते हैं कि भारत के लिए जो करना चाहें, कर सकते हैं। आज स्वराज का यज्ञ शुरू हो गया है। किन्तु भिक्षा की आशा रखने वाले लोग इसमें क्या भाग लेंगे? मुझ जैसा शायद कोई निकल पड़े, किन्तु मेरे पास तो ज्वार-बाजरे की रोटियां हैं और आपको तो सांझ पड़ते ही पकौड़ियां चाहिए। यदि किसी के मन में ऐसा गर्व हो कि समय आने पर हम यह सब कर सकते हैं, आज से ही उसकी चिन्ता करने की क्या जरूरत है तो ऐसा सोचने-कहने वाले मैंने बहुत देखे हैं। वे समय आने पर कुछ नहीं कर पाते। जेल में जाने वाले वहां कैसा बरताव करते हैं, इसका हमें अनुभव हो चुका है। सन् 1920-21 में जो जेल गये, उन्होंने खाने-पीने के मामले में कितना झगड़ा किया और कैसे-कैसे काम किये, यह सबको मालूम है। उससे हमें शरमाना पड़ा। यह नहीं मानना चाहिए कि इच्छा करते ही त्याग करना आ जाता है। वह बहुत प्रयत्न करने से ही आता है। जिस आदमी में त्याग की इच्छा है, परंतु जिसने छोटे-छोटे रसों को जीतने का प्रयत्न नहीं किया, उसे वे ऐन मौके पर दगा देते हैं। यह बात अनुभव से सिद्ध हो चुकी है। यदि आज सब छात्र समझने का प्रयत्न करें, तो आप देखेंगे कि मैंने जो बातें कही हैं, वे सादी हैं और उन पर आसानी से अमल किया जा सकता है।

(17 जन.'30 को साबरमती छात्रालय में भाषण) ❑

गांधीजी और आज का भारत

❑ विष्णु प्रभाकर

मैं नहीं समझता कि गांधीजी को लेकर आज के भारत की चर्चा करने से कोई लाभ हो सकता है। गांधी आज एक नाम भर है, एक शब्द मात्र है। उस शब्द का अर्थ क्या है यह जानना तो दूर, वह शब्द भी आज की पीढ़ी के लिए परियों की कहानी का एक पात्र बनकर रह गया है।

गांधी-विचार की लंबी-चौड़ी व्याख्या न करते हुए मैं एक उर्दू शायद के शब्दों में केवल इतना कहना चाहूंगा कि :

'अंधेरा मांगने आया था,
रोशनी की भीख।
हम अपना घर न जलाते,
तो क्या करते।।'

शायद यही उस युग का आदर्श था।

और आज के कम्प्यूटर युग की पहचान भी एक दूसरे उर्दू शायर के शब्दों में इस प्रकार है :

'अंधेरा छा जाएगा जहान में,
अगर यही रोशनी रही।'

गांधीजी आज केवल इसलिए अधिक जाने जाते हैं कि उन्होंने भारत को विदेशी शासन से मुक्त कराने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। लेकिन वास्तविकता यह है कि स्वाधीनता उनके लिए इतनी महत्त्वपूर्ण नहीं थी, जितने सत्य, प्रेम, अहिंसा आदि मानवीय मूल्य। उन्होंने सबसे अधिक सत्य और कर्म पर जोर दिया। यह सत्य और कर्म का सिद्धांत कभी भी झुठलाया नहीं जा सकता; पर आज शब्द अपने अर्थ से दूर हट गये हैं। अस्पृश्यता कानूनन समाप्त कर दी गयी है, पर वह नये-नये रूपों में निरंतर बढ़ती जा रही है। जब तक जाति-पांति का उन्मूलन नहीं होगा, अस्पृश्यता का अस्तित्व भी किसी-न-किसी रूप में बना रहेगा। सत्ताकामी लोग अपनी कुर्सी की रक्षा के लिए किसी भी सीमा तक जा सकते हैं और जा रहे हैं।

यह मात्र एक उदाहरण है। हर क्षेत्र में यही कहानी दोहरायी जा रही है, जिसका परिणाम आतंकवाद के रूप में हमारे सामने है। आज गांधी होते तो नोआखाली की तरह आतंकवादियों के बीच में जाकर रहने लगते। जनमानस की जितनी और जैसी पहचान उन्हें थी, वैसी और उतनी पहचान आज किसी में नहीं है। और जब तक यह पहचान नहीं होती, तब तक किसी समस्या का समाधान भी नहीं हो सकता। कम्प्यूटरी समाधान से हम गद्‌गद हो सकते हैं, पर आश्वस्त नहीं। मानव मूल्यों से रहित विज्ञान किसी भी युग में किसी का भी भला नहीं कर सकता।

बहुत कम लोग जानते हैं कि उन्होंने आधी धोती या लंगोटी क्यों पहनी। बार-बार इसके लिए लोगों ने उनका उपहास उड़ाया, लेकिन वह तो समाज के निचले तबके के अधनंगे, अधभूखे गरीब के साथ जुड़कर रहना चाहते थे। उन्होंने हमें एक मंत्र दिया था कि जब भी, कुछ भी करने जाओ तो पहले यह सोच लो कि इसको करने का लाभ समाज के सबसे निचले तबके के व्यक्ति को मिलेगा या नहीं। दावा तो आज भी यही किया जाता है, लेकिन परिणाम क्या है यह भी सबके सामने है।

उन्होंने हमें अपने परिवेश पर, अपनी भाषा पर और अपने वेश पर गर्व करना सिखाया था। आत्मसम्मान की वह भावना आज कहीं भी देखने को नहीं मिलती। उन्होंने कहा था कि हम अपनी खिड़कियां खुली रखें, जिससे बाहरी हवा अंदर आये, लेकिन यह भी हमें देखना है कि वह हवा आंधी का रूप न ले ले, जिससे हमारे पैर अपनी ही धरती से न उखड़ जायें। लेकिन आज हम अपनी धरती से उखड़ चुके हैं, यही सबसे बड़ी त्रासदी है। वे न मशीन के विरोधी थे, न विज्ञान के; पर मनुष्य को निकम्मा या व्यर्थ कर दे ऐसी यांत्रिकता वे नहीं चाहते थे।

वे अन्याय का प्रतिकार करना मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार मानते थे; लेकिन एक निश्चित मर्यादा के भीतर। उनसे पूछा गया था कि अराजकता को मिटाने के लिए लोग क्या करें। उनका उत्तर था कि उन्हें शांति से अराजकता का सामना करना चाहिए। लोग अशांत होकर दुकानें लूटने लगें या मारा-मारी करने लगें तो उससे काम नहीं बन सकता। ऐसा करने से लोग बे-मौत मरते हैं और अगर डर के मारे सरकार झुक भी जाये और लोगों की मांग पूरी भी कर दे तो भी उससे न तो लोगों को फायदा पहुंचेगा, न सरकार को। अराजकता तो मिटती ही नहीं। अनाज पड़ा हो, फिर भी वह भूखों को न मिले तो वे सत्याग्रह कर सकते हैं। भीख मांगने या डाका डालने के बदले आमरण उपवास करें और इस तरह अपने लिए तथा दूसरों के लिए न्याय हासिल करें। वे कहते थे कि जो जाति मरना जानती है, उसे ही जीने का अधिकार है। आज के इस गहराते संकट के अवसर पर किसी को गांधी-नीति की याद नहीं आती। लेकिन एक बार जवाहरलाल नेहरू को कहना पड़ा था कि वैज्ञानिक प्रगति अच्छे को बुरा और बरे को अच्छा नहीं बना सकती। हमें अपने मस्तिष्कों को इस नये अणु युग, अंतरिक्ष की और ग्रह-नक्षत्रों की यात्रा के युग के अनुरूप विचार करने योग्य

बनाना चाहिए। अगर हम ऐसा नहीं करते हैं तो सिवा संपूर्ण विनाश के दूसरा कोई चारा नहीं।

नेहरू की यह भविष्यवाणी आज कितनी सच हो रही है। कभी-कभी कोई भूला-भटका व्यक्ति उस मार्ग की ओर इशारा अवश्य करता है, जिसे गांधी-मार्ग कहा जाता है; लेकिन नक्कारखाने में तूती की आवाज कौन सुनता है। कुछ लोगों ने स्वीकार किया है कि सन् 1947 में हमने गांधी-मार्ग की उपेक्षा करके गलती की। उस समय यदि हम जनता के उत्थान और विकास के लिए अपनी प्राथमिकताओं का निर्णय स्वस्थ और व्यापक दृष्टि से कर सकते तो आज अंत्योदय की दिशा में बहुत आगे बढ़ गये होते।

गांधीजी ने हमें व्यापक कार्यक्रम दिया था, उसकी चर्चा यहां संभव नहीं है। उनका सपना था कि सारे देश में स्वावलंबी, स्वशासी और छोटे-छोटे ग्रामराज्य कायम हो जायें। उन्होंने कहा था कि खादी की वृत्ति का अर्थ है जीवन की आवश्यकताओं के उत्पादन और वितरण का विकेन्द्रीकरण। विकेन्द्रीकरण की इस भावना का समर्थन अमरीका के हेनरी फोर्ड, आस्ट्रेलिया के विख्यात अर्थशास्त्री कोलिन क्लार्क आदि अनेक पश्चिमी दुनिया के विद्वानों ने भी किया था। ग्रामीण जीवन अपनाने का अर्थ जंगली अवस्था को लौट जाना नहीं है, बल्कि डॉक्टर सर्वपल्ली राधाकृष्णन् के शब्दों में, 'भारत की प्रकृति के अनुकूल जो जीवन है, उसकी रक्षा करने का यह एकमात्र तरीका है।' पं. जवाहरलाल नेहरू भी मानते थे कि सच्चा संयोजन सरकार के किसी अंग के द्वारा हो ही नहीं सकता। उसमें ठेठ गांधी के लोगों का सहयोग होना चाहिए।

आज ये बातें कहने वाला कोई नहीं रह गया है। गांधीजी की बात को समझना तो दूर, आज तो कुछ लोग यह बात मानने को भी तैयार नहीं होंगे कि गांधीजी ने कभी कहा था, 'मैं इस हद तक तो समाजवादी हूं ही कि ऐसे सब कारखाने या तो राष्ट्रीयकृत होने चाहिए या राज द्वारा नियंत्रित। वहां काम करने की हालतें अच्छी होनी चाहिए। और उनमें काम करने वालों को सभी मानवोचित सुविधाएं मिलनी चाहिए। ऐसे कारखानों को मुनाफे के लिए नहीं, जनता के लाभ के लिए चलाना चाहिए। उनका प्रेरक उद्देश्य लोभ नहीं, प्रेम होना चाहिए।'

उन्होंने यह भी कहा था कि मैं यह भी नहीं चाहता कि कवि अपना संगीत छोड़ दे, किसान अपना हल, वकील अपने मुकदमे, डॉक्टर अपना शल्य-शालक्य। मैं तो उनमें सिर्फ 30 मिनट रोज कातने का त्याग चाहता हूं। मैंने भूखों मर रहे बेकार स्त्री-पुरुषों को गुजारे के लिए और अधपेट रहने वाले किसानों को अपनी आमदनी बढ़ाने के लिए चरखा कातने की सलाह जरूर दी है।

अगर हमने इन शब्दों के पीछे के अर्थ को समझने की वास्तिविक चेष्टा की होती तो संभवतः हमें उस तरह भटकना न पड़ता, जैसे हम आज भटक रहे हैं। चारों तरफ शब्दों का तूफान है, पर परिणाम है अराजकता और आतंकवाद। दक्षिण भारत की एक पत्रिका के संपादक ने बहुत ठीक लिखा था कि जब हम 21वीं सदी में छलांग लगा रहे होंगे तो हमारी पूंछ हमें वापस मिल जायेगी।

जाने दीजिए अर्थशास्त्र और विज्ञान की बातें। भारत सरकार के मंत्रियों के लिए उन्होंने एक आचार संहिता बनायी थी। अपने को गांधी का शिष्य मानने वाले कितने मंत्री हैं जो यह मानते हैं कि मंत्री पद सत्ता का नहीं, सेवा का द्वार है कि पदों के लिए छीना-झपटी होनी ही नहीं चाहिए। लालफीताशाही को खत्म करने की योजना तो वे क्या बनाते, वे स्वयं इसका शिकार हो गये हैं। आज देश में 'फॉरेन' का क्रेच बढ़ रहा है और गांधीजी बात करते थे स्वदेशी की। वे कहते थे कि मंत्रियों को और गवर्नरों को ज्यादा-से-ज्यादा सत्य परायण, अहिंसा परायण, नम्र और सहनशील होना चाहिए। वे सादगी और मिव्ययता को अपनायें। पुलिस का भय मिट जाना चाहिए। वह जनता की मित्र बने।

अंत में हम यही कहेंगे कि गांधीजी मानते थे कि उनके सपनों का स्वराज्य गरीबों का स्वराज्य होगा। जीवन की जिन आवश्यक वस्तुओं का उपयोग राजा और अमीर लोग करते हैं वही उन्हें भी सुलभ होनी चाहिए। उनके लिए प्रजातंत्र का अर्थ था कि इस तंत्र में नीचे से नीचे और ऊंचे से ऊंचे आदमी को आगे बढ़ने का समान अवसर मिलना चाहिए। जिस तरह मनुष्य के शरीर के सारे अंग बराबर हैं, उसी तरह समाज रूपी शरीर के सारे अंग बराबर होने चाहिए। यही समाजवाद है।

हमें अपने से ही यही प्रश्न पूछना है कि क्या हम ऐसा कर पाये? उनके ध्येय को सामने रखकर आगे बढ़ने की कोशिश की हमने? 'गांधीजी का समाज का जो चित्र था वह हमारी सरकार के सामने नहीं है,' ये भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के शब्द हैं। यही बात पं. जवाहरलाल नेहरू को परेशान करती थी, 'हमको अपने गरीब देशवासियों के बारे में ज्यादा सोचना चाहिए और जितना जल्दी हो सके उनकी हालत को ऊंचा उठाने के लिए कुछ करना चाहिए।

कहते आज के शासक भी यही हैं लेकिन कम्प्यूटर की भाषा आदमी की भाषा नहीं है, क्या कोई इस सत्य का स्वीकार करेगा और मनुष्य को अपने अंतर में झांकने की दृष्टि देगा? कम्प्यूटर से समय बचाकर हम आखिर उसका क्या उपयोग करना चाहते हैं यही यक्ष प्रश्न है। जो इसका उत्तर दे सकेगा वही गांधीजी के सपनों के भारत का निर्माण ज्यों-का-त्यों कर सकेगा। प्रश्न गांधीजी की हर बात को स्वीकार करने का नहीं है, बल्कि उनके पीछे जो भावना है, उसको समझने का है। विचार शाश्वत है, लेकिन विचार निरंतर विकसित भी होता है। यह विकसित होना ही उसके शाश्वत होने की गारंटी है। इस रहस्य को ही हमें समझना है। ❑

विश्व जनसंख्या दिवस : 11 जुलाई

माल्थस का सिद्धांत और वर्तमान जनसंख्या वृद्धि

❑ प्रो. रामचन्द्र सिंह

अन्य देशों की अपेक्षा भारत में गरीबी और बेकारी की समस्याएं अधिक हैं। इसी कारण भारत में माल्थस को याद किया जाता है, क्योंकि जनाधिक्य और गरीबी तथा प्राकृतिक आपदाओं के सह-संबंध पर ही माल्थस ने प्रकाश डाला था। ज्ञात है कि माल्थस ने प्रतिपादित किया था कि यदि मनुष्य बढ़ती जनसंख्या पर स्वतः रोक नहीं लगाता है तो प्रकृति आगे बढ़कर रोक लगाती है। 1877-78, 1881, 1892 एवं 1897 तथा 1900 ई. के अकालों में 1.5 करोड़ व्यक्ति अकाल के कारण भारत में मरे। इधर के वर्षों में सुनामी, भूकम्प, बाढ़ एवं सूखे का संत्रास भारत में लगा रहता है।

अठारहवीं शताब्दी के अंत (1798 ई.) में माल्थस ने जनसंख्या वृद्धि पर अपना आलेख प्रकाशित किया। आलेख में जीवन-निर्वाह के संसाधनों एवं जनसंख्या वृद्धि पर समीकरण प्रस्तुत किया गया था तथा भयावह भविष्य को प्रदर्शित किया गया था। समीकरण में बतलाया गया था कि संसाधन अंकगणित की दर से बढ़ते हैं, जबकि जनसंख्या की वृद्धि बीजगणित की दर से होती है। माल्थस ने चेतावनी के साथ लिखा था कि जनसंख्या वृद्धि को यदि मानवीय समुदाय संयमपूर्वक रोकने में असमर्थ होगा तो प्राकृतिक हस्तक्षेप से वृद्धि रोकी जायेगी। महामारी, महायुद्ध, सूखा, अकाल, बाढ़ और भूकंप के द्वारा प्रकृति जनसंख्या को संतुलित करती रहेगी। इस स्थापना का बड़ा प्रचार हुआ। कहा गया कि जो मानक धनवृद्धि में अर्थशास्त्र के आधुनिक जनक एडम स्मिथ को दिया जाता है तथा वितरण में रिकार्डो को दिया जाता एवं उत्पादन तथा वितरण के रिश्ते में जान स्टुअर्ट मिल को दिया जाता है, वही स्थान जनसंख्या के अर्थशास्त्र में महर्षि माल्थस को दिया गया है।

उल्लेख है कि अठारहवीं शताब्दी के अंत और उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में औद्योगिक एवं कृषि-भूमि संबंधित क्रांतियों के लक्षण स्पष्ट रूप से समाज में परिलक्षित होने लगे थे। कुटीर उद्योग-धंधों के स्थान पर कारखानों को तेजी से प्रश्रय प्राप्त होने लगा और ग्रेट ब्रिटेन के ग्रामीण शिकार युग से हटकर कृषि युग में आगे बढ़ने लगे। क्रांतियों ने दिन-प्रतिदिन परिवर्तन उपस्थित करना प्रारंभ कर दिया, फलस्वरूप मध्ययुगीन प्रतिबंधों का स्थान खुली प्रतिस्पर्धा ने ग्रहण किया। इन परिस्थितियों ने आर्थिक विज्ञान को जन्म दिया। इस आर्थिक विज्ञान के प्रतिवाद के रूप में समाजवाद उत्पन्न हुआ। वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार भूमंडल की आबादी 6 अरब 20 लाख है। भारत की आबादी 1 अरब, दो करोड़ 80 लाख है। इसमें गत 8 वर्षों की वृद्धि शामिल नहीं है। अप्रत्याशित रूप से बढ़ रही जनसंख्या वृद्धि ने अनेकानेक समस्याओं को जन्म दिया है। पर्यावरण प्रदूषण, जलवायु की विकृतियां, दहशतगर्दी एवं हिंसा में वृद्धि तथा गरीबी की रेखा का छोटा न होना एवं जीवन-स्तर एवं यापन पर प्रभाव और अनेक प्रकार की वनस्पतियों एवं जीवधारियों का विलुप्त हो जाने जैसी घटनाएं तेजी से घट रही हैं। विश्व की सभी सरकारें जनसंख्या नियंत्रण के कार्य में लगी हुई हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ एवं अनेक वैश्विक संघटन इस कार्य में योगदान कर रहे हैं। उल्लेख है कि संयुक्त राज्य अमेरिका सहित पश्चिम के देशों में पिछले 150 वर्षों में सीमित परिवार की अवधारणा क्रियाशील हुई लेकिन जनसंख्या-वृद्धि की रफ्तार बढ़ती गयी। इसका कारण स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार रहा है। मृत्यु दर में कमी के कारण सीमित परिवार की अवधारणा जनसंख्या वृद्धि को रोक नहीं सकी। वस्तुतः स्वास्थ्य सेवाओं में अप्रत्याशित उन्नति एवं हरित क्रांति के कारण जनसंख्या की वृद्धि होती गयी।

अन्य देशों की अपेक्षा भारत में गरीबी और बेकारी की समस्याएं अधिक हैं। इसी कारण भारत में माल्थस को याद किया जाता है, क्योंकि जनाधिक्य और गरीबी तथा प्राकृतिक आपदाओं के सह-संबंध पर ही माल्थस ने प्रकाश डाला था। ज्ञात है कि माल्थस ने प्रतिपादित किया था कि यदि मनुष्य बढ़ती जनसंख्या पर स्वतः रोक नहीं लगाता है तो प्रकृति आगे बढ़कर रोक लगाती है। 1877-78, 1889, 1892 एवं 1897 तथा 1900 ई. के अकालों में 1.5 करोड़ व्यक्ति अकाल के कारण भारत में मरे। इधर के वर्षों में सुनामी, भूकंप, बाढ़ एवं सूखे का संत्रास भारत में लगा रहता है। इस प्रकार माल्थस भारत में बने हुए हैं। भारत के संदर्भ में निराशावादियों का कहना है कि निरंतर हम कठिनाइयों की तरफ बढ़ रहे हैं। बर्मा (म्यांमार) भारत से अलग हुआ। चावल एवं गेहूं का भारतीय भंडार कुछ अंशों में रिक्त हो गया। वर्ष 1947 में भारत का विभाजन हुआ। 82 प्रतिशत आबादी भारत के हिस्से में आयी। भारत के हिस्से गेहूं पैदा करने का क्षेत्र 65 प्रतिशत प्राप्त हुआ और चावल पैदा करने का क्षेत्र 68 प्रतिशत ही प्राप्त हुआ। इस कारण खाद्यान्न संकट उपस्थित हुआ। जनसंख्या वृद्धि की रफ्तार 1.70 करोड़ प्रति वर्ष है। आशावादी विचारकों का कहना है कि घनत्व की दृष्टि से विचार करना चाहिए। इन विचारकों का कहना है कि भारत में जनसंख्या का घनत्व 267 व्यक्ति प्रति किलोमीटर है। यदि इसकी तुलना जापान, जर्मनी, बेल्जियम और इंग्लैंड

से की जाय तो जनाधिक्य प्रतीत नहीं होगा। इन विचारकों का यह भी तर्क है कि भारत के प्रति व्यक्ति की प्रति वर्ष आय में वृद्धि हो रही है। यदि जनाधिक्य होता तो ऐसा संभव नहीं हो पाता। आशावादियों का कहना है कि औद्योगिक तरक्की से जनाधिक्य की समस्या का समाधान किया जा सकता है, लेकिन स्थिति यह है कि 63 वर्षों की प्राप्त स्वतंत्रता के पश्चात् भी देश की कुल आबादी का 24 प्रतिशत भाग गरीबी रेखा के नीचे रहने को विवश है, साथ ही यह भी निर्विवाद तथ्य है कि जनाधिक्य रोके बिना देश के अंतिम व्यक्ति तक समुन्नत, सुशिक्षित एवं सुरक्षित जीवन यापन के लक्ष्य प्राप्त नहीं किये जा सकते हैं। वैश्विक स्तर पर भी आशावादियों और निराशावादियों के साथ-साथ एक नया आंदोलन स्वच्छन्दता के नाम पर समलैंगिकतावादियों का चल रहा है। पश्चिम के देशों में इसके संघटन पिछले कई दशकों से क्रियाशील हैं।

इनके संघटन भारत में भी हैं और इन संघटनों ने कानूनी सुरक्षा प्राप्त करने के लिए कदम उठा लिया है तथा कुछ-कुछ सफल भी हुए हैं। वस्तुतः ऐसे संघटन कदाचार की श्रेणी में आते हैं। ब्रिटिश भारत सरकार ने भारत का जितना भी शोषण किया हो, लेकिन उसने कदाचार को बढ़ावा नहीं दिया। इसी कारण ब्रिटिश भारत सरकार ने इण्डियन पेनल कोड में समलैंगिकता को दंडनीय अपराध माना है। ज्ञात है कि महर्षि माल्थस भी दुराचार के द्वारा जनसंख्या नियंत्रण नहीं चाहते थे।

वे व्यक्तियों को सदाचार की तरफ उन्मुख करना चाहते थे। इतिहास इसका प्रमाण है कि विश्व की 21 सभ्यताओं में से 19 सभ्यताएं कदाचार के कारण विश्व पटल से विलुप्त हो गयीं। भारत एवं चीन की ही दो प्राचीन सभ्यताएं बची हैं। भारत में यदि कदाचार को कानूनी स्वरूप प्रदान कर दिया गया तो भारतीय संस्कृति की रक्षा करने में यहां की संतति असमर्थ हो जायेगी। गांधी-विनोबा के देश में कम-से-कम कदाचार का तो बहिष्कार करना ही होगा। ❑

ग्राम स्वराज

❑ **मधुकर सिंह**

रामरतन बैलगाड़ी से वनगांव प्राइमरी स्कूल के सामने उतरा ही था कि गांव में हलचल मच गयी कि स्कूल में छः महीने बाद नये पंडी जी आये हैं। जब से स्कूल की मंजूरी मिली है, तब से रामरतन यहां का तीसरा शिक्षक है। दो और शिक्षकों की जगह थी। परंतु अभी तक एक शिक्षक यहां रहा है। दो शिक्षक कागज पर ही थे। इसके पहले जो शिक्षक यहां था, अपना तबादला कराकर यहां से चला गया था। छः महीने गुजर गये थे यहां कोई नहीं आया था। जिला शिक्षा अधीक्षक के यहां कुछ उत्साही युवकों ने काफी दौड़-धूप की थी। उन्हें बराबर एक ही जवाब मिलता था, आप लोगों से ज्यादा चिन्ता सरकार को है। शिक्षकों की नयी बहाली होते ही वहां तीन शिक्षक भेज दिये जायेंगे। गांव के बच्चों में पढ़ने की भूख जठरानल की तरह बढ़ती जा रही थी।

रामरतन को तीन-चार दिन पहले बहाली की चिट्ठी मिली थी। उसे एक सप्ताह के भीतर स्कूल ज्वाइन करने का आदेश मिला था। रामरतन के साथ उसकी औरत और बेटी भी थी। गांव वाले को देखकर अचरज भले हो, परंतु रामरतन के सामने लाचारी थी। दो-तीन साल ट्रेनिंग करने के बाद शहर में पड़ा हुआ था। बारह साल की बेटी हुई तभी उसने अपनी नसबंदी करायी थी। पता नहीं, बेरोजगारी जिन्दगी भर के लिए रह गयी तो सुअरों जैसे बच्चों की टोली का पालन कहां से करता। ट्यूशन से औरत-बेटी को शहर में रहकर पाल रहा था। यह तो महज संयोग था कि तीन साल के बाद उसे नौकरी मिल गयी थी और बनगांव प्राइमरी स्कूल उसके लिए पहली जगह थी। उसके पास सामान इतना कम था कि लग ही नहीं रहा था कि इसकी कोई निजी दुनिया हो। महज छोटे-छोटे दो बक्से थे, एक बिस्तर और तीन झोले में किताबें थी। गांव में कइयों को हंसी छूट रही थी कि पंडी जी नौकरी करने आये हैं या औरत-बेटी के साथ तीर्थ पर निकले हैं। अब तक तो ऐसे ही पंडी जी यहां रहे हैं, जो शनिवार को घर भागते, तो सोमवार को शाम तक लौटते। कभी-कभी तो हफ्ता भी लगा देते। पढ़ाई के लिए भूख के यही सब कारण हैं। स्कूल के सामने जब बैलगाड़ी खड़ी हुई तो एक-दो लोगों ने पूछ भी दिया था, आप शनिचर को घर नहीं जायेंगे क्या? रामरतन ने बड़ी सरलता से सिर हिला दिया था—नहीं जी। मैं यहां से कभी नहीं जाऊंगा।

रामरतन, उसकी औरत और बेटी बैलगाड़ी से सामान उतारकर देर से भौचक खड़े थे। स्कूल के तीनों कमरों में ताले लटके थे और बरामदा पुआल और घास-फूस से पटा था। रामरतन अकबकाया हुआ था। कुछ समझ नहीं पाया कि सचमुच वह स्कूल पर ही है या किसी के दरवाजे पर भटककर चला आया है। तभी एक आदमी ने उसे लेकर, ''पंडी जी आप कौन जाति हैं?'' रामरतन बोला, ''मेरा नाम रामरतन है।''

''रामरतन!'' वह आदमी चकराया, ''आगे-पीछे तिवारी, सिंह अथवा राम कुछ नहीं?'' रामरतन उस आदमी का मतलब समझ गया, कुछ बोला नहीं, मुस्कुराकर रह गया। वैसे हिन्दी जनपदों में किसी अपरिचित से उसका नाम-पता जानने के पहले जाति जानने की उत्सुकता होती है। जाति जानने के बाद ही संबंध बनाने या स्थापित करने की बात सोचते हैं। वह आदमी समझ गया, पंडी जी कोई छोटी जाति पड़ते हैं, इसलिए छिपा रहे हैं। लालबुमुकड़ के अंदाज में बोला, ''रहने दीजिए, मैं समझ गया। अभी आप आये हैं, थके होंगे। आराम कीजिए।'' वह चला गया।

रामरतन को हंसी भी आयी! कैसा बनैला गांव है—जैसा नाम वैसा गुण। गजब

चलन है हमारे समाज में। रोटी की असमानता की फिक्र नहीं है, समाज-जाति की असमानता के प्रति लगाव है। चलो, बच्चे से लेकर बूढ़े तक उसे पंडी जी संबोधन तो करेंगे न! काफी देर तक अपना भविष्य अंधेरे में खड़ा रहा, स्कूल को ऊपर-नीचे ताकता रहा। अभी सिर्फ नौकरी लगी है। नौकरी का भविष्य जाने क्या होगा? थका-थका वह बेटी और औरत के साथ पुआल और खर-पात एक बगल समेटकर बैठ गया।

उन्हें लगा कि बनगांव के वे कुछ नहीं हों, जैसे भुसा-पुआल का कोई किस्म हो। धीरे-धीरे शाम हो गयी और शाम के बाद अचानक रात भी होने लगी। तब दोनों ने महसूस किया, जोरों की भूख लगी है। बेटी को जैसे हठात ध्यान आया हो, ''चना-चबेना बक्से में रखा गया था न माई?'' माई के चेहरे पर प्रसन्नता-पसर गयी, ''ठीके याद दिलायी।'' माई ने बक्सा टटोलकर चैला निकाला। स्कूल के कुंए पर बाल्टी पड़ी थी। रामरतन बाल्टी में पानी लाया। उन्होंने चबैना खाकर भरपेट पानी पी लिया और पुआल में घुसकर उस रात चुपचाप खो गये। सामने बिजली का बल्ब आंखों पर चमक रहा था। ताज्जुब है। इस मायने में बनगांव बड़ा भाग्यशाली है। मुफ्त में सारे गांव को बिजली मिल रही है। रामरतन सो नहीं पा रहा था। उसने झोले से कोई किताब निकाली—बापू की आत्मकथा थी। रामरतन मन लगाने लगा, पढ़ते-पढ़ते उसे भी नींद आ गयी।

सुबह एक दर्जन बच्चे कुंए के पास से उन्हें घूर रहे थे। रामरतन को अनुमान हुआ ये सारे-के-सारे बच्चे पढ़ने वाले हैं। रामरतन के भीतर आशा की किरण सुगबुगायी, पता करने आये हैं, दस बजे की प्रतीक्षा में छः महीने से पढ़ाई-लिखाई छूटने से इनके भीतर हलचल होगी। ''आओ, बच्चो! बैठो मेरे पास।'' वह फुसफुसाया और उनकी तरफ को हंसी आयी, भईया रामरतन, ससुर डिप्टी ने कहा मनमानुषो के एक लड़का निर्भीक वहां रह गया था। उसे प्यार से सहलाते हुए रामरतन ने पूछा, ''तुम लोग भागते क्यों हो?''...''मुखिया जी मारते हैं।''

''कौन मुखिया जी?'' ''बनवारी मिहिर।''

''क्यों मारते है बनवारी मिहिर?'... ''कहते हैं उनका पुआल नुकसान होता है। किसी साले को स्कूल पर देख लिया तो टांग काट लेंगे।''

''ऐसी बात है।'' अचरज और भय से रामरतन की आंखें बड़ी हो गयी।

''हां जी! इसलिए तो हम उधर ताकते भी नहीं।''

''तब मुझे देखकर भागे क्यों?''

''पहले वाले मास्टर मुखिया जी की सलामी में हमें मारकर खदेड़ते थे और खुद अपने गांव भाग जाते थे।''...''मैं अपने गांव नहीं भागूंगा।''

''तब रहेंगे कहां आप? ''लड़का आंखें बड़ी-बड़ी कर उसके मुंह लगने लगा।

''तुम लोगों के साथ।''

''आप मारेंगे नहीं?''...''बिल्कुल नहीं।''

''मुखिया बोलेगा तब भी नहीं?''... ''मैं तो तुम्हारी बात मानूंगा।''

लड़के को आत्मीय लगा रामरतन। उसने पूछा, ''आप स्कूल के नये पंडी जी हैं?''

''पंडी जी नहीं, मैं तुम्हारा नया शिक्षक हूं।''

''शिक्षक क्या होता है—मास्टर साहेब जी ना।''

''हां, जो शिक्षा देता है, जो तुम्हें रोशनी दे। मुझे पंडी जी मत कहना।''

लड़का उसे घूरने लगा। वह उसके साथ बरामदे तक बैठ आया। लड़के को नये पंडी जी पहले की तरह न क्रूर लगे, न उतने अज्ञानी। उसने पुआल पर पड़ी किताब उठा ली और कवर की तस्वीर निहारने लगा। ''यह तो गांधीजी का फोटो है।'' रामरतन को बेहद खुशी हुई। ''तुम इन्हें जानते हो?'' उसने पूछा।

''खूब जानता हूं।''...''कैसे?''

''इन्होंने अंग्रेजों की गुलामी से भारत को आजाद कराया था।''

अब रामरतन को उसमें दिलचस्पी हुई। फिर पूछा, ''भारत क्या है?''

''हमारी मातृभूमि है।'' लड़के ने बात बदल दी, ''आप हमें पढ़ायेंगे कहां, मास्टर साहेब जी?'' लड़का उसके बिल्कुल निकट आ गया था।

''स्कूल में और कहां?''

''स्कूल में तो मुखिया जी का भूसा रहता है। वे किसी को भी अंदर घुसने नहीं देते और हम वहां बगीचे में पेड़ के नीचे पढ़ते हैं। पिछले पंडी जी ने उन्हें भूसा रखने के लिए स्कूल दे दिया है।''...''वे कहां रहते थे।''

''मुखिया जी के दरवाजे पर, नहीं तो बगीचे में।''

''बगीचा में।'' रामरतन मन ही मन फुसफसाया। लगता है, बनवारी मिहिर गांव के बड़े दबंग और प्रतिष्ठित आदमी हैं। इनके भय से गांव का पत्ता भी नहीं हिलता होगा। इसलिए बच्चों तक में आतंक है। रामरतन ने मन में दुहराया—सभी गांवों का एक ही हाल है। ''और कुछ यहां के बारे में बताओ, मेरे बेटे?'' रामरतन ने पूछा। ''गर्मियों में गांव के आधे लोग यहीं सोते हैं। रातभर ताश खेलते और गांजा पीते रहते हैं।''

''बिजली रात भर जलती है?''

''हां'', लड़का बोला, ''मुखिया जी के कारण यहां बिजली रात-दिन रहती है।''

''तब यहां शिक्षक के रहने का घर नहीं है?''

''है क्यों नहीं? वहां कुआं के पीछे सामने वाला। परंतु आगे तो सुदामा सिंह की भैंस और नौकर रहते हैं। आप कहां रहेंगे?''

''सुदामा सिंह कौन है?''...''सभी उन्हें मालिक कहते हैं और यहां के सरपंच हैं।'' थोड़ी देर रुकने के बाद लड़का बोला, ''आप लोग मुंह-हाथ धो लीजिए। मैं आप लोगों के लिए घर से रसोई लाता हूं।''

"तुम्हें कोई बोलेगा तब?"

"कोई नहीं बोलेगा। बाबू सुदामा सिंह का ट्रैक्टर हांकते हैं।"

वह जाने लगा, तो रामरतन ने पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है, बेटा?"

"नाम तो मास्साहेब जी, मेरा रामईश्वर है। लेकिन मालिक मुझे रावना करते हैं। मैंने एक बार गांव की रामलीला में रावण का पाठ लिया था। तो उसी दिन से मालिक मुझे रावना कहते हैं। उनके देखा-देखी सभी मुझे रावना ही कहते हैं।"

"लेकिन मैं तुम्हें रामईश्वर कहकर बुलाऊंगा।"

लड़का बग बगाकर हंसा और घर की ओर भागा। रामरतन के मन में तरह-तरह की आशंकाएं उठने लगीं। नौकरी पाकर भी नौकरी करना उससे भी दुस्सवार है। भइया रामरतन महतो, तुम्हारी आदमियत और उसकी क्षमता की परीक्षा-घड़ी है। तनिक साहस से काम लो। गरीबी केवल धन के अभाव के कारण नहीं आती, सामाजिक नजरिया के कारण भी आती है। बेटा, यहां नौकरी करनी है तो झेलो दोहरी मार। वर्ग और वर्ण की दोगली मिलावट बड़ी मारक होती है। बेटी भूख से ऐंठ रही थी। रामरतन को तो सहने की पुरानी आदत है। इस मामले में उसकी औरत घोर पतिव्रता है। रामरतन की भूख और उसकी भूख सहोदरा है। रह गयी कुसुम बेचारी। अनबोलता गऊ।

इसी बीच वे देखते क्या हैं कि दस-बारह बच्चों के साथ पांच-सात ग्रामीण महिला-पुरुष स्कूल की ओर बढ़े आ रहे हैं! वे अपने-अपने घरों से नये मास्साहेब के लिए रसोई तैयार कर ला रहे हैं। उन्होंने रामरतन के सामने उसके सम्मान में आयी सामग्रियां बिखेर दी। रामरतन के चेहरे पर आश्चर्य मिश्रित खुशी तिर रही थी। वह गदगद हो कहने लगा, "हम तीन प्राणियों के लिए पूड़ी-सब्जी, चावल कढ़ी-बरे, पापड़ और मक्के की रोटी-साग—इस महाभोज में आपको भी साथ देना होगा।"

पियर राउत हाथ जोड़ते हुए बोला, "मास्साहेब जी, मैं रामईश्वर का बाप हूं। बनगांव में आपके आगमन से हमारे पांव खुशी के मारे धरती से गज भर ऊपर हैं।"

"हमारा भोज तभी सार्थक है, पियर राउत जी, जब आपके बच्चे-बच्चियां स्कूल में पढ़ने के लिए आयेंगी। वह बाग कब से अपने बच्चों की बोली सुनने के लिए तरस रहा है। मगर स्कूल में ताला कब तक लटका रहेगा?"

"इसका जवाब तो मुखिया जी ही देंगे?" पियर राउत ने कहा, "उन्हीं की कृपा से गांव में स्कूल है। उन्हीं की देख-रेख में भवन बना है।"

"तब यहां लड़के क्यों नहीं पढ़ते?"

"मुखिया जी कहते हैं, भवन का विधि-विधान, पोथी-पतरा के अनुसार पूजा-अनुष्ठान और उद्घाटन होगा, तभी बच्चे स्कूल में पांव लगायेंगे।"

"कब होगा ये सब?" "जब विधायक जी फुर्सत में होंगे। उन्होंने ही मुखिया जी के कहने से भवन बनाने में रुपये लगाये हैं।"

रामरतन को गांव की राजनीति समझ में आ गयी। उसने साफ-साफ कहा, "भाई रे! आप लोग मेरा साथ दीजिए! मैं आपके बच्चों को इस कमरे के अंदर पढ़ाऊंगा।"

सबने चुपी साध ली। पियर राउत को एक लकीर आगे बोलने की हिम्मत नहीं हुई। ये लोग मुखिया या सरपंच नाम से भय खाते हैं। कई लोग एक साथ बोल पड़े, "हमारे लड़के बगीचे में आम के पेड़ के नीचे पढ़ना सीख जायेंगे। हमारे लिए बवाल उठाना ठीक नहीं है। आप तो बदली कराकर चले जायेंगे। सितम सहना पड़ेगा हमें!"

उनके बीच से सितम शब्द उछलकर रामरतन के माथे से चिपक गया। वह भीतर-भीतर बुदबुदाया—क्या महतो जी? आप किस घड़ी-नक्षत्र में पैदा हुए थे कि पैदाईश के साथ सितम चिपक गया। मां-बाप से लड़-झगड़कर पढ़ना-लिखना सीखा। अब पढ़ाना-लिखाना भी लड़-झगड़कर करना है। रामरतन ने किसी किताब में कहीं पढ़ा था, खाली कलम-किताब नहीं है। असल में पढ़ाई चेतना का नाम है। अगर बनगांव में सितमगारों के खिलाफ चेतना आ गयी तो बहुत बड़ी बात है। इस 'पढ़ाई' को बच्चों के पिताओं के बीच ले जाना ही मास्साहेब की बहुत भारी जिम्मेदारी है।

रामरतन कई दिनों तक खुद के साथ माथा-पच्ची करता रहा कि क्या करना चाहिए! घर-घर घूमकर बच्चों को स्कूल भेजने के लिए निहोरा करता रहा। धीरे-धीरे कुछ लड़के आने भी लगे। वह वहीं पुआल पर बैठकर उन्हें पढ़ाने भी लगा। स्कूल की सारी कुर्सियां मुखिया जी के दुआर पर खाली पड़ी थी परंतु वह अकेला था, दो और शिक्षकों को योगदान के लिए बनगांव आना था। लेकिन वे अभी तक पहुंचे नहीं थे। रामरतन को पता है कि वे अपने घर के आसपास बदली के लिए पैरवी में लगे होंगे। रामरतन के लिए यहां या वहां, कहीं भी कोई फर्क पड़ने वाला नहीं था।

एक दिन वह सुबह-सुबह बनवारी मिसिर के दुआर पर पहुंचा। मिसिर जी नाराज थे—दस दिन से ऊपर हो गये इस मास्टर को गांव आये हुए। ऐसा अभिमानी है कि दुआर पर झांकने तक के लिए नहीं आया। प्रणाम-पाती और योगदान की बात तो दूर रही। इसमें नक्सलाइट के लक्षण हैं। जिस-तिस ने मुखिया जी से पूछ दिया—यह नक्सलाइट क्या होता है? मिसिर जी जिस-तिस को समझाते, जो धर्म, परम्परा और बड़े-छोटे के भेद को नकारता है, वही नक्सलाइट कहलाता है। खांटी कम्युनिस्ट सुदामा सिंह उसका नाम सुनते ही नाक-भौं सिकोड़ते हैं। मास्टर का काम पढ़ाना है, घर-घर जाकर लड़कों को बुलाना नहीं। दूसरी तरफ आम आदमी हैरान है कि यह मास्टर है या फरिश्ता जो दरवाजे-दरवाजे जाकर बच्चों को स्कूल भेजने के लिए चिरौरी कर रहा है। जो दूसरे की चिन्ता करता है, उसी का नाम महात्मा गांधी है। बनगांव की

चिन्ता-फिकिर के लिए गांधीजी अवतरित तो नहीं हुए हैं! स्कूल में ऐसे लड़के-लड़कियां आने लगे थे, जिनके मां-बाप को स्कूल नाम से कोई जिज्ञासा नहीं थी। कुआं के पिछवाड़े आम के पेड़ के नीचे गांव भर के लड़के भर जाते थे। कुछ खास घर ही थे जो अपने लड़कों को स्कूल नहीं भेजते थे। रामरतन दस-पांच लड़कों को लेकर स्कूल के बरामदे में भी दस बजे से लेकर शाम चार बजे तक बच्चों को पढ़ाने आने के दूसरे दिन से ही शुरू कर दिया था। लड़के आते। प्रार्थना की मुद्रा में खड़े हो जाते। रामईश्वर शुरू करता कि 'हे प्रभु आनन्ददाता, ज्ञान हमको दीजिए' कि रामरतन टोक देता—यह प्रार्थना गलत है और आगे-आगे कहता, लड़के पीछे-पीछे दुहराते—'जागो रे मजदूर-किसान

रात गयी अब हुआ विहान
किरणों की आहट पाकर
कमलों ने आंखें खोली
ताकत नयी हवा से पाकर
गूंगी लहरें बोली
भौंरा बन सब ओर गूंजता
परिवर्तन का गान। जागो रे...
सोने की हथकड़ियां पाने को
है दुनिया सारी
गूंज रही है दसों दिशाएं
होगी विजय तुम्हारी
चलो साथियो चलो जल रहा
सारा हिन्दुस्तान।... जागो रे!''

दो-चार मनचले आपस में मजाक भी करते कि इस तरह पढ़ाई चली तो गांव के सारे नान्ह-रेआन विद्वाने बन जाये। सारे कुत्ते काशी चले तो हांढ़ी कौन ढूंढ़ेगा। यह सब खबर रामरतन को भी मिलती थी, क्योंकि उसके भी लोग तैयार हो रहे थे। सुदामा सिंह सरपंच की एक बार सुनकर उसे भुटका लगा कि यह नया स्कूल मास्टर मर्यादाहीन है। बेटी-औरत को लेकर गांव में आने की क्या जरूरत थी? उस टेंढ़ी मांग वाली औरत को देखते ही समझ गया था कि वह खानदानी नहीं है। असम-बंगाल से भगायी हुई खानगी है। जवान बेटी यहां के जवानों को ललचायेगी। रामरतन का माथा सुनते ही गरम हो गया। कैसा बेसमझ है सुदामा सिंह? इसकी बहू-बेटी है कि नहीं!...

''कहिए मास्साहेब, कैसे आना हुआ?'' बनवारी मिसिर ने टोका।

''एक निवेदन था सर''। उसने दोनों हाथ जोड़ लिए, जैसे भीख मांग रहा हो। ''सोमवार को डिप्टी साहब आने वाले हैं।''

''तब मुझे क्या करना होगा?''... ''ताला खोलवा देते।''

बनवारी मिसिर मुंह फाड़कर हंसे। ''कल सफाई हो जायेगी। बस यही न कि और कुछ?'' ''मैं कहां रहूं? उसमें तो सरपंच की भैंस रहती है।''

''उनसे भी कहता हूं।''

बनवारी मिसिर ने इतना ही किया कि बरामदे से पुआल-भूसा निकलवा लिया। मगर कोठरियों में ताले ज्यों-के-त्यों लटके रहें। सुदामा सिंह ने तो दौड़ाते-दौड़ाते बेदम कर दिया। बड़ी मुश्किल से कोठरी खाली की। रामरतन, औरत और बेटी कुसुम ने मिल-जुलकर कोठरी और बरामदे को साफ किया। गांव के लोग खड़ा-खड़ा तमाशा देख रहे थे—यह नया मास्टर किस काठी का है। दुनियादारी में एकदम मूरख है, अघोष है, निर बुद्ध। गांव का आदमी इतना मूर्ख और निरामिष नहीं रह गया है। तभी तो मिसिर जी इसे मजाक-मजाक में नक्सलाइट कहते रहते हैं—देखा न? स्कूल और अपने रहने की कोठरी खाली करा ही दम लिया। नक्सलाइटों के सारे लक्षण इसमें हैं। कहीं मिसिर जी की रामरतन के खिलाफ कोई साजिश तो नहीं चल रही है? इसने उनके स्वाभिमान को मुंह खोलकर चोटिल किया है। अबोध और सरल रामरतन पर गांव के ज्यादातर लोगों की सहानुभूति होने लगी है। मिसिर जी और सुदामा सिंह एकाएक उसकी नौकरी चबाकर रहेंगे। उनसे बरामदा और कोठरी खाली करवाना हंसी-मजाक है क्या? अब तो और जोर-जोर से उसे नक्सलाइट कहेंगे—नक्सलाइट रामरतन मास्टर।

मन ही मन मिसिर जी के नक्सलाइट रामरतन मास्टर के पक्ष में लोग होने लगे थे। रामरतन का ध्यान बच्चों की पढ़ाई की ओर ज्यादा था, स्वयं के प्रति और बनगांव की राजनीति की ओर तो बिल्कुल नहीं। लड़कों पर किसी तरह के दबाव की जरूरत नहीं थी। वे समय के पहले ही घरों से स्कूल की ओर भागते। पहली बार उन्हें भरोसा हुआ कि उनके लड़के भी कुछ पढ़ाई-लिखाई कर सकते हैं और रामरतन भी पहला स्कूल मास्टर है जो अपना 'बच्चा' बूझ रहा है। कहीं ऐसे निर्माता के खिलाफ मुखिया-सरपंच मिलकर आंधी-तूफान खड़ा कर तबादला न करा दें। फिर तो इन बच्चों का सही पिता गांव से छिन जायेगा। इनके बच्चे समझदार होते हैं तो मिसिर जी, सुदामा सिंह चिढ़ते क्यों हैं?... लोग मास्साहेब को नक्सलाइट कहते-कहते कल हमें भी कहने लगें तो?

जिस दिन डिप्टी साहब आने वाले थे, उस दिन रामरतन ने सुदामा सिंह, बनवारी मिसिर के अलावे दूसरे लोगों को भी बुलाया था, घर-घर जाकर खबर कर आया था, जैसे बनगांव प्राइमरी स्कूल का वार्षिकोत्सव हो। ठीक घंटी लगते ही लड़के बरामदे के नीचे कतार में खड़े हो गये थे। रामरतन आगे-आगे पंक्ति कहता था। दिन का पहला पाठ शुरुआत यहीं से होती थी और लड़के मग्न होकर गाने लगते थे—

जागो रे मजदूर-किसान
रात गयी अब हुआ विहान

यह क्या, वहां इकट्ठे ग्रामीण भी बच्चों के साथ मिलकर गा रहे थे। जैसे गांव में कीर्तन हो। बनवारी मिसिर और सुदामा सिंह आपस में बुदबुदाने लगे। वे ताव में आकर रामरतन की निष्ठा को गलिया रहे थे—यह मास्टर पूरे गांव को हड़ताल का गाना सिखा रहा है।...बनगांव में बवाल करायेगा। डिप्टी साहब से भी उन्होंने रामरतन की भरपेट शिकायत की। डिप्टी साहब उन्हें आश्वासन देकर चले गये थे कि रामरतन के तबादले की

सिफारिश जरूर करेंगे। पंचायत के मुखिया-सरपंच नहीं चाहते हैं तो सरकार भी उनकी बातों को मानेगी। वे केवल पंचायत के अभिभावकों से आवेदन पर हस्ताक्षर कराकर भेज दें।

उन दोनों ने आवेदन में बहुत कुछ के अलावा यह भी लिखा कि उसकी औरत-बेटी का भी चाल-चलन ठीक नहीं है। सभी मरद से हंस-हंसकर बतियाती रहती हैं, और चमार टोली से लेकर बाबूटोली तक दिनभर घूमती रहती हैं।...लड़के-लड़कियों को वो गाना और नारा सिखलाती हैं। गांव भर की औरतों को शाम को बटोरकर पढ़ाने के नाम पर उन्हें असामाजिक बातें सिखलाती है। गांव ने उस आवेदन पर हस्ताक्षर करने से साफ इंकार कर दिया। गांव के सारे लोग बुद्धू नहीं थे। पियर राउत ने खुलकर मुखिया और सरपंच का विरोध किया कि उनसे स्कूल और शिक्षक निवास खाली करवाने से नाराजगी है। स्कूल के भवन में भूसा और कोठरी में सरपंच की भैंस बंधेगी तो पियर राउत की क्यों नहीं? स्कूल विद्या का मंदिर है कि भैंस का बथान...? हम ताला तोड़कर बच्चों को घुसायेंगे। वैसे भी मिसिर जी और सुदामा सिंह के परिवार के लड़के स्कूल कहां आते हैं? उनका मत है कि हमारे लड़के के साथ उठने-बैठने से उनके लड़के खराब हो जायेंगे। खराब लोगों की नाराजगी उन्हें मालूम नहीं है। बनवारी मिसिर ने गांव में कहला दिया। जब डिप्टी साहब के यहां दरखास्त पर हस्ताक्षर या अंगूठे का निशान नहीं लगाना है तो अपने लड़के को स्कूल भी मत भेजा करो। लोगों को बच्चों को स्कूल नहीं भेजना मंजूर था, मगर रामरतन जैसा हीरा मास्टर के खिलाफ हस्ताक्षर या अंगूठे का निशान मंजूर नहीं था।

रविवार का दिन था।

पियर राउत कहने लगा, ''चलि मास्साहेब जी, आज छुट्टी का दिन है, आप लोगों को बांध से घुमा लाता हूं।''

पियर सचमुच अपने नाम के अनुरूप बड़ा ही प्यारा आदमी है—एकदम खुला मन और निर्भीक। पत्नी और बेटी के साथ हो लिया। चारो गांव से दो कोस दूर गंगा नदी के ऊपर निकल आया। पियर राउत उन्हें गाइड की तरह समझा रहा था, ''पिछले दस साल पहले हमारा गांव बड़ा हरा-भरा था। गंगा का सुहाना तट था, घाट था। सारा गांव प्रायः गंगा नदी में ही नहाता धोता था। हरे-भरे पेड़ थे। यहां जो उदासी देख रहे हैं आज, वहां हमलोग बचपन में चिक्का-कबड्डी, रात में पहड़िया डिल्लो एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर खेला करता थे। शीशम, आम, अमरूद, जामून, सहतूत, बेर के बहुत सारे पेड़ थे। इधर दस साल के भीतर दबंग लोगों ने पेड़ कटवाकर बेच दिय।''

''यह तो आम गैरमजरूआ रैयती जमीन है न!'' रामरतन ने पूछ दिया।

''जी मास्साहेब जी'', वह साफ-साफ बोला, ''वन विभाग को मिलाकर लूट-पाट चलता रहता है।'' वे लोग बांध के ऊपर आ गये थे। पियर राउत फिर बोलने लगा, ''बांध के पहले हर साल बाढ़ आती थी। भदई फसल की थोड़ा-बहुत बर्बादी तो होती थी, मगर उससे ज्यादा चिन्ता हमें नहीं रहती। गंगा खेती की खराब माटी अपने साथ बहाकर ले जाती, और उपजाऊ माटी खेतों में बिछा जाती। उस साल फसल दुगनी होती। अनाज इतना होता कि हम अगले साल भी आराम से खाते। गंगा फसल ले गयी तो ले जायं।''

''पियर भाई'', रामरतन कहने लगा, ''जब से नदियों पर बांध बनने लगा तब से नदी, पानी, पेड़ और बादल भी हमसे नाराज होने लगे। देखिए प्रकृति भी हमारी तरह आजादी चाहती है। उनकी आजादी हमने छीनी, तो हमसे रूठने लगी। पानी तरसाने लगा, नदियां सूखती गयीं। अब बताइए, जब से बांध बना है तब से गंगा आप से कितनी दूर आ गयी है।'' ''मत पूछिए'', पियर बोला, ''कम से कम पास कोस गंगा दस साल पहले जहां थी, वहां आज कांट-कुश और झरबेर की झाड़ियां हैं।''

''शहर को बचाने के लिए गांव को विराना बना दिया गया। बांध हमारे लिए अभिशाप है, पियर भाई।'' पियर बताने लगा, ''यही बनवारी मिसिर के बाबूजी सुराजी बाबा ने बांध का विरोध किया था।''...'सुराजी बाबा?''

''हां, जी। हम तो उनका नाम सुराजी बाबा ही जानते हैं। अंग्रेजी राज से लड़े। जेल गये, मार खायी। वे तो हमारे गांव-ज्वार के महापुरुष थे। ठीक बनवारी मिसिर के सुभाव के विपरीत। उन्होंने तो बांध का विरोध किया था। गांधीजी के सुराजियो के साथ इक्कीस दिन तक इसी जगह पर सैकड़ों लोगों के साथ अनशन किया था। तब भी बांध बनना कहां रुका?''

''पियर भाई'', रामरतन बताने लगा, ''सबसे ज्यादा बांध वाले देशों में आज नदियां खतरे में हैं, जैसे हमारे यहां गंगा, सोन और उत्तर बिहार की नदियां। चीन का नाम सुना होगा। चीन जैसा मुल्क अपने सीमित प्राकृतिक संसाधनों से जिस तेजी से आर्थिक विस्तार कर रहा है, वह सीमित प्राकृतिक साधनों के लिए बोझ की तरह है। यह मुल्क आज स्वयं पानी और ऊर्जा दोनों संकटों से जूझ रहा है। जीवन और समाज के लिए बहती अफ्रीकी नदियां करिबा, लेसोको, हाइलैण्ट्स, कहारो, बस्सा वगैरह तमाम नदियां बांधों के कारण भयावह उजास और डरावने रेतों में बदल रहे हैं। हमारे यहां सरस्वती की बात छोड़िये, जमुना और गंगा के साथ मनुष्यों के दुर्व्यवहार पर रोना आता है। दिल्ली के आसपास जमुना गंदे नालों में बदल गयी है। आने वाले पचीस-तीस वर्षों में दुनिया पानी के लिए तरसेगी। ये सब मनुष्य की क्रूरता, हिंसा और पाप का भोग है।''

पियर राउत सुनकर चकित है। यह मास्टर मामूली आदमी नहीं है। सुराजी बाबा जैसा विशाल और पावन मन का है। बनवारी जैसे पापियों से यही बचा भी सकता है। एक

दिन की संगति में पियर राउत ने कितना सीखा है। उसने कहा, ''मास्साहेब जी, मुझे स्कूल की प्रार्थना बहुत अच्छी लगती है। अपने लड़के से पूछ-पूछ कर सीख रहा हूं। आपका गीत बड़ा जोशीला है। जी करता है, बराबर सुनता रहूं।''

''आपको मेरी बातें अच्छी लगती हैं?''

''बहुत अच्छी। सुन-सुनकर मीठे सपने आने लगते हैं। आपको मालूम है हमारा राज कब आयेगा?''

''इसमें कई जन्म लगेगा। अभी कितने भगत सिंह, राजगुरु, सुखदेव, चन्द्रशेखर को कुर्बानियां देनी होंगी। अभी तो पियर भाई, इसी बनगांव में कोई लड़ाई हमारे सपनों के लिए लड़ी नहीं गयी है।...'' इस तरह बतियाते शाम ढलने लगी। लौटते समय अचानक कुसुम ने पूछा, ''पियर चाचा, यहां हाईस्कूल नहीं है?''

''है बेटी। यहां से तीन कोस पर। परानपुर में है। मेरा बड़ा बेटा सुबल मैट्रिक में पढ़ता है।''...''कोई लड़की नहीं जाती हैं?''

''एक जाती है, सुदामा सिंह की बेटी। मगर सुदामा का बेटा रोज मोटरसाइकिल से पहुंचा जाता है और शाम को ले आता है।''

''तब तो मैं भी वहां नाम लिखवा लेती हूं, क्यों पापा?''

''हां, बेटा।'' जैसे रामरतन को अचानक स्मरण हो आया हो, ''मैं बनगांव आते ही तुम्हें भूल गया। एक दिन शहर जाकर तुम्हारा टी. सी. लाता हूं। स्कूल का नाम क्या है पियर भाई?''...''सुराजी बाबा हाईस्कूल, परानपुर।''

''सुराजी बाबा?'' रामरतन चौंका।

''हां, बनवारी मिसिर ने बनगांव में जमीन नहीं दी, तो परानपुर वालों ने उनके नाम पर हाईस्कूल बना लिया।'' रामरतन के मुंह से अनायास निकल गया, ''यह बनवारी मिसिर आपसी विरोधी हैं, इसलिए शिक्षा-विरोधी हैं।''

सोमवार को तो एक भी लड़का स्कूल नहीं आया शायद, रामरतन के विरोध करने के लिए ग्रामीण तैयार नहीं थे। मुखिया की धमकियों की उन्हें परवाह थी, परवाह थी रामरतन को लेकर कि उन्हें उनकी साजिश का शिकार होना पड़ेगा। मियां-बीबी साथ घर-घर निकले। सभी ने एक स्वर से राय दी—मास्साहब जी, आप हमारे बच्चों को बगीचे में पढ़ाइये। हम चंदा कर वहां फूस का स्कूल बना देंगे। रामरतन ने इसका विरोध किया। कहा, ''सोचिए, ज्यादती के सामने झुकने का मतलब ज्यादती और बढ़ेगी। प्रतिकार और प्रतिरोध मनुष्य के स्वभाव में है। बच्चे वहीं पढ़ेंगे। आप सिर्फ मेरा साथ दीजिए।'' दूसरे दिन से बच्चे आने लगे। रामरतन की उदासी धीरे-धीरे छंटने लगी। पियर राउत जैसे लोगों से बड़ा ढांढस मिलता है। उसने पूछा, ''हमारे अधिकार के दिन कब आयेंगे?''...''जिस दिन आप बनवारी मिसिर और सुदामा सिंह के बदले मुखिया-सरपंच बनेंगे?''

''हम कभी नहीं बनेंगे।''

''तब आपके दिन कभी नहीं आयेंगे? सोचिए, जो आदमी अपने महापुरुष पिता के नाम पर स्कूल के लिए जमीन नहीं दे सकता, वह शिक्षा का कितना बड़ा विरोधी है, उसका मकसद है कि गांव का बच्चा-बच्चा निरक्षर रहेंगे, ताकि शिक्षा के लिए आने वाले सरकारी पैसे खा जायं। यह सिलसिला कायम रहे, तो उनका वर्चस्व कायम रहेगा और वे बनगांव पर राज करते रहेंगे।''

रामरतन की बातें उन्हें तीर की तरह लगीं। उन्होंने संकल्प लिया, हम रामरतन मास्टर को किसी भी हालत में गांव से जाने नहीं देंगे। इनके रहने से सिर्फ बच्चे ही नहीं पढ़ेंगे, गांव भी बदलेगा।

रामरतन को भी तबादले की चिन्ता नहीं थी। वह तो कहीं भी नौकरी कर सकता है, तनख्वाह मिलता रहेगा। लेकिन दो-तीन लोगों की उसकी वजह से नींद हराम है। उन्हें उत्तर देने के लिए गांव में उसका होना बहुत जरूरी है।

गर्मियों की छुट्टियों के बावजूद रामरतन ने स्कूल खुला रखा था। उसे कहीं जाना भी था कसुम का भी परानपुर में नाम लिखा गया था। लड़के भी छुट्टी के मूड में नहीं थे। अभिभावक-लड़कों की राय से स्कूल खुला रखा गया था। यह बात बनवारी और सुदामा को नागवार गुजरी थी। भला सोचिए, सरकारी आदेश की अवहेलना। लड़कों को लू लग गयी तो? उसने बनवारी मिसिर को अपने कमिया से खबर भिजवायी कि गर्मी के लिए सरकार की ओर से स्कूल बंद है। मुखिया जी का भूसा खलिहान में पड़ा है। हवा और आंधी से भूसा खलिहान में उड़िया रहा है। आप लड़कों को स्कूल में पढ़ाइए। बरामदे में भूसा रखना है।

रामरतन ने बात नहीं मानी, स्कूल बरामदे में पूर्ववत चलता रहा। एक रोज लड़के गर्मियों में स्कूल आये तो देखा मास्साहेब जी के सिर पर पट्टी बंधी है और वे बरामदे के नीचे उदास बैठे हैं। घटना ये हुई थी कि रात वह पियर राउत के घर से लौटकर कुंए के पास खड़ा था और बेटी कुसुम को बुलाकर बाल्टी मांग रहा था। तभी तीन-चार लोग आए और ताबड़तोड़ रामरतन पर लाठियां छोड़ने लगें। रामरतन गिर पड़ा था। औरत और कुसुम चिखने-चिल्लाने लगी थीं। आसपास के लोग जमा हो गये थे। पियर ने होशियारी की कि बगल से डॉक्टर को बुलाकर मलहम-पट्टी करवा दी। बौखलाए लोगों को उसने समझाया, ''थाना-पुलिस करने की जरूरत नहीं है। मामला उलट दिया जायेगा। हम मास्टर का इलाज कराकर मामला शांत कर लेंगे।'' लड़के हैरत में डबडबायी आंखों से रामरतन को देर तक निहारते रहे। उनके प्यार में वह बच्चों की तरह रोने लगा था। मास्साहेब को रोते देखकर बच्चे भी सिसकने लगे थे। 'रामरतन

से जो इन्हें अपनापन मिला था उस कारण लड़के काफी विचलित और असमंजस की स्थिति में थे।

''तुम लोग रो रहे हो, मेरे बच्चो'' रामरतन उठकर उनके और अपने भी आंसू पोंछता जा रहा था। ''तुम्हें क्या बताऊं कि बनगांव में मेरा कौन दुश्मन है? असल में वह दुश्मन रामरतन महतो का नहीं, हमारी-तुम्हारी खुशियों का है। वह समझ गया है कि तुम और तुम्हारे माता-पिता की नासमझी मिटने लगी है।''

''उस दुश्मन को हम जानते हैं, मास्साहेब जी'' जोर से सिसकते हुए एक लड़का सुखराम बोला। रामरतन ने मुस्कुराने की कोशिश की। ''इसका मतलब है, तुम अपने दुश्मन को पहचानने लगे। मैंने सोचा था, बनगांव छोड़कर कहीं और चला जाऊंगा, मगर अब...''रोने लगा था रामरतन।

लड़कों ने कतार तोड़कर ऐसे घेर लिया, जैसे रामरतन अभी जा रहा हो। वे चारों तरफ से चिल्लाने लगे, ''हम आपको नहीं जाने देंगे...नहीं तो हम भी आपके साथ चलेंगे?''

रामरतन बहुत भावुक हो उठा, ''अब नहीं जा रहा हूं। मरूंगा, चाहे जिऊंगा, मगर इसी गांव में रहूंगा।

यह मामूली-सी घटना जरूर है कि चोर-गुंडे मास्साहेब के यहां बुरी नियत या चोरी के लिए ही आये होंगे। ऐसी घटनाएं गांवों में इन दिनों आमफहम है। इस वजह से मास्साहेब का गांव छोड़कर जाना एकदम बुजदिली है। लेकिन पियर राउत इसे मामूली कहकर टालने के लिए तैयार नहीं है। मास्साहेब जी की पढ़ाई नयी है कि लड़कों के साथ-साथ उनके माता-पिता भी शामिल हैं। यही वजह है कि कुछ लोगों को बुरा लगता है। रामरतन ने कहा, ''गांव छोड़ने की जरूरत नहीं है। आपने जो पाठ पढ़ाया है वह अधूरा है। अभी तक पहला पाठ ही पढ़ा नहीं हुआ है। तबादला हो ही गया, तब भी नहीं जाने देंगे।'' रामरतन बोला, ''मेरे लिए आप नौकरी नहीं भाव प्यारे हैं। आपके बच्चे प्यारे हैं। स्कूल खाली करना हमारा पहला पाठ है।''

गांव वालों की आंखें चमक उठी। इस घटना के एक सप्ताह बाद मिसिर जी का आदमी फिर आया और बोला, ''मास्साहेब जी। मुखिया जी का कहना है अभी गर्मियों के दिन हैं। लड़के को बगीचे में पढ़ाइए। पहले भी कहलाया गया था। भूसा खलिहान में बर्बाद हो रहा है। वहां से उठाकर बरामदे में रखवाना है।''

रामरतन ने इसका कोई जवाब नहीं दिया। बात दो-चार दिनों तक टलती गयी। परंतु दोबार मिसिर जी का भाई सुदामा सिंह को लेकर आया रामरतन पर गरमाने लगा।

रामरतन को भी ताव आ रहा था। उसने जवाब दिया, ''यह स्कूल है, मिसिर जी गोशाला नहीं है। गांव के लोग तो ताला तोड़कर कोठरियों से भूसा बाहर करने वाले हैं। चिन्ता है तो भूसा कहीं सुरक्षित रखवा दीजिए।''

स्कूल का समय हो रहा था। लड़के धीरे-धीरे आने लगे थे। वे आते ही प्रार्थना के लिए पहले कतार में स्वयं लग जाते थे, परंतु अभी रामरतन पर आफत देखकर वे उसकी चारों तरफ गोलबंद हो गये। जब मिसिर जी के भाई ने रामरतन पर हाथ छोड़ दिया, तो लड़के मास्साहेब के अपमान को बर्दाश्त नहीं कर सके और जान की परवाह न करते हुए दुश्मन पर बाज की तरह टूट पड़े। सुदामा सिंह घर से बंदूक लाने दौड़ पड़े। इसके पहले बच्चों के घरवाले सौ-डेढ़ सौ करीब लाठियों के साथ स्कूल पर आ गये थे। निश्चिंत और निर्भीक रामरतन ने मुस्कुराते हुए पहला पाठ शुरू कर दिया और लड़के कतार बनाकर पीछे-पीछे दोहराने लगें—

जागो रे मजदूर-किसान
गयी रात अब हुआ विहान

वे सीना और लाठी ताने खड़े थे। उन्हें सुदामा सिंह की बंदूक की प्रतीक्षा थी। ❑

काका साहेब के नचिकेता : रवीन्द्र केलेकर

❑ **रमेश भारद्वाज**

कोंकणी भाषा और साहित्य के संस्थापकों में श्री रवीन्द्र केलेकर का अप्रतिम स्थान है। कोंकणी भाषा और साहित्य की अस्मिता के संघर्ष के लिए पिछले छह दशकों से चले आंदोलन में उनकी भूमिका को रेखांकित करने तथा उनकी तपःपूत साधना के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करने के लिए राष्ट्र ने उन्हें सन् 2007 में साहित्य अकादमी फेलो से और फिर सन् 2010 में भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार से अलंकृत किया था। दिनांक 27 अगस्त, 2010 को उन्होंने इस संसार से विदा ली। उनके जीवन के महत्त्वपूर्ण पहलुओं में से एक है उनके काका साहेब कालेलकर के विचारों को मराठी, गुजराती और हिन्दी के पाठकों तक पहुंचाने में की गयी उनकी मौन साधना।

गोवा को छोड़कर शेष भारत की आजादी के जश्न में उत्सवरत वातावरण में गोवा की आजादी के लिए तत्पर युवा रवीन्द्रभाई चालीस के दशक के अंत में ऐसे आचार्य, गुरु, मार्गदर्शक की तलाश में थे जो उनकी तरह गोवा की राजनैतिक आजादी का पक्षधर, सांस्कृतिक धरोहर का भक्त तथा कोंकणी भाषा की अभिरक्षा तथा समृद्धि के लिए सतत विचाररत हो। उनकी यह खोज काका साहेब को पाने में परिपूर्ण हुई।

उनके शब्दों में : ''काका साहेब ने उन्नीस सौ पैंतालीस में कोंकणी भाषा को बढ़ावा देना शुरू किया था। कोंकणी का मुख्य केन्द्र गोवा है और काका साहेब का गोवा के साथ बहुत पुराना संबंध है। उनके

पुरखे गोवा के हैं। कुलदेव भी गोवा में हैं। उनके घर की बहुएं अक्सर कोंकणी ही बोलती थीं। कोंकणी के माधुर्य से वे बचपन से परिचित थे। बाद में उसकी संस्कार-संपन्न आंतरिक शक्ति को देखकर वे उससे कुछ प्रभावित और मोहित भी हुए। इतनी सुंदर मीठी और संस्कारी-भाषा केवल उसके सुपुत्रों की उपेक्षा के कारण साहित्य-निर्मिति के क्षेत्र में पिछड़ी रही, इस बाता का उन्हें दुख था।

''गोवा की राजनैतिक परिस्थिति से परिचित होने पर उन्हें कोंकणी की एक और शक्ति का दर्शन हुआ। उन्होंने देखा कि दो बिलकुल स्वतंत्र दुनिया में रहने वाले गोवा के ईसाइयों और हिन्दुओं को एकत्र जोड़ने वाली यही एक कड़ी है। गोवा को सामाजिक संगठन की नितांत आवश्यकता है। बल्कि यह संगठन ही स्वराज्य-प्राप्ति की बुनियाद है।

''उन्होंने यह भी देखा कि गोवा के ईसाई लगभग चार शताब्दियों से देश के सांस्कृतिक प्रवाह से अलग कर दिये गये हैं। उनमें यदि राष्ट्रीय जागृति लानी हो और उन्हें यदि देश के सांस्कृतिक प्रवाह में लाना हो तो कोंकणी ही एकमात्र प्रभावी साधन बन सकती है। गोवा के सामाजिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय संगठन के एक प्रभावी साधन के तौर पर काका साहेब ने कोंकणी के विकास-कार्य को बढ़ावा देना शुरू किया।''

1948 में श्री रवीन्द्र केलेकर वर्धा की काकावाड़ी में स्थित गांधीयुग के जंगम विद्यापीठ आचार्य काकासाहेब के एक विद्यार्थी के रूप में जुड़े। फिर उनकी मृत्यु तक उनके अंतरंग सान्निध्य में रहे। श्रुति परंपरा के बहुश्रुत आचार्य और जीवंत विश्वकोष काकासाहेब के सान्निध्य में रवीन्द्रभाई कोंकणी, पुर्तगाली और मराठी के साथ गुजराती, संस्कृत, बांग्ला, हिन्दी भाषाओं के भी आधिकारिक विद्वान बने। मूलतः काकासाहेब एक अच्छे निबंधकार थे। उनके मराठी, गुजराती और हिन्दी के निबंधों के लेखन और फिर विषयवार उनके पुस्तकाकार रूप में संगठन तथा संपादन में दत्तचित्त रवीन्द्रभाई के योगदान को काकासाहेब ने अपने ग्रंथों के आमुख में अभिनंदित किया। सन् 1981 में काकासाहेब की मृत्यु के बाद भी गांधी हिन्दुस्तानी साहित्य सभा ने उनके अनेक ग्रंथ हिन्दी, गुजराती, मराठी में प्रकाशित किये। इनमें एक भी पुस्तक ऐसी नहीं थी, जिसकी पांडुलिपि अपना अंतिम रूप पाने के लिए रवीन्द्रभाई के गांव प्रियोल की डाकयात्रा करके न आयी हो। काकासाहेब की पंद्रह खंडों में प्रकाशित गुजराती ग्रंथावली तथा ग्यारह खंडों में प्रकाशित हिन्दी ग्रंथावली भी इसका अपवाद नहीं है।

उपयुक्त विषय को सिलसिलेवार रेखांकित करने के लिए तो पुस्तकाकार लेख लिखना पड़ेगा। मगर यहां एक लेख में रवीन्द्रभाई की तीन पुस्तकों के विषय में संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत है। दो तो काकासाहेब की जीवनियां हैं, जिनमें एक नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा राष्ट्रीय चरितमाला में प्रकाशित संक्षिप्त जीवनी (150 पृष्ठ) तथा दूसरी प्रकाशन विभाग, भारत सरकार की आधुनिक भारत के निर्माता सीरीज में प्रकाशित विस्तृत जीवनी (612 पृष्ठ) है। तीसरी पुस्तक भारतीय सांस्कृतिक उपनिषद् परंपरा में सर्जित 'ज्ञाननिधिचयां सान्निध्यांत' है। इसमें रवीन्द्रभाई ने नचिकेता बनकर प्रश्न-उपप्रश्नों के माध्यम से ज्ञानगंगा का प्रवाहन किया।

वैसे तो पिछले पांच दशकों में काकासाहेब के जीवन, साहित्य और विचार दर्शन को केन्द्रित करके अनेक पुस्तकें लिखी गयीं। मगर रवीन्द्रभाई चूंकि उनके अंतेवासी होने के साथ संपूर्ण गांधी विचार परंपरा के समालोचक या कहें तो सूक्ष्म समीक्षक भी रहे हैं, अतः उनकी दोनों जीवनियों में जहां एक तरफ काकासाहेब के जीवन विकास के सोपान प्राकट्य पाते हैं, वहीं अन्य गांधी विचारकों के अंतरंग प्रसंगों से निर्मित अवस्थितियों का भी दिग्दर्शन होता है। ये ऐसे अंतरंग प्रसंग, घटनाएं हैं, जिनका चित्रण अन्यत्र दुर्लभ है।

लोकमान्य तिलक और गांधीजी की बैठक की पृष्ठभूमि और परिणाम को दर्शाते रवीन्द्रभाई लिखते हैं—''लोकमान्य मंडाले से लौटकर आये थे। राजनीति में काकासाहेब अपने को लोकमान्य के ही अनुयायी मानते आये थे। पर अब जब गांधीजी की तेजस्विता, राष्ट्र-भक्ति और चरित्र-शुद्धि पर वे मुग्ध हो गये, उनको यह महसूस होने लगा कि अगर लोकमान्य और गांधीजी एक दूसरे को पहचान सकें और एक साथ काम कर सकें तो देश का बहुत बड़ा काम होगा।

गंगाधर राव देशपांडे लोकमान्य के दाहिने हाथ माने जाते थे और काकासाहेब गंगाधर रावजी के आत्मीय थे। बेलगांव में प्रांतीय पोलिटिकल कांफ्रेंस का आयोजन हुआ था। इस अवसर पर काकासाहेब के आग्रह से गंगाधर रावजी ने ऐसा एक प्रबंध किया जिससे सम्मेलन में लोकमान्य और गांधीजी दोनों उपस्थित रह सकें, और दोनों बिलकुल एकांत में एक दूसरे से मिल सकें। दोनों बेलगांव में एक दूसरे से मिले। लगभग डेढ़ घंटे तक दोनों के बीच बातचीत चलती रही। बाद में कमरे के बाहर आकर लोकमान्य ने गंगाधर रावजी से कहा, ''यह आदमी हमारा नहीं है, इसका मार्ग भिन्न है। पर वह पूरा सच्चा है। हमें इतनी सावधानी बरतनी चाहिए कि कहीं भी इसके साथ हमारा विरोध न हो। जहां तक हो सके उसकी हमें मदद ही करनी चाहिए।''

लोकमान्य की गांधीजी के विषय में यह राय जब गंगाधर रावजी ने काकासाहेब को बतायी तो उन्हें लगा, ''भले ही लोकमान्य गांधीजी के साथ काम न कर सकें, पर उनके अनुकूल तो हो गये हैं।''

इसी तरह काकासाहेब और आचार्य कृपालानी के संबंधों में आये दुराव के कारण का चित्रण भी देखें : ''इस समय विद्यपीठ के आचार्य और कुलनायक के रूप में कृपालानीजी काम करते थे। वे काकासाहेब के एक घनिष्ठ मित्र थे। फर्ग्यूसन कॉलेज के छात्र-जीवन के समय से उनसे संबंध थे। और काकासाहेब के निमंत्रण से ही विद्यापीठ में आये थे। इसलिए काकासाहेब को गलतफहमी की कोई चिन्ता नहीं थी।

कृपालानीजी से मिलकर वे विद्यापीठ में अपना स्थान निश्चित करने वाले थे। पर जब गांधीजी ने कहा कि वे कृपालानी को विद्यापीठ से बाहर खींचकर उत्तर भारत में खादी के काम के लिए भेजना चाहते हैं तब काकासाहेब बोले, ''मैं विद्यापीठ में जाऊं और कृपालानी को विद्यापीठ छोड़ना पड़े, इससे तो हमारे बीच गलतफहमी होगी।''

''वह मुझ पर छोड़ दो, मैं देख लूंगा।'' गांधीजी ने उन्हें आश्वासन भला कौन प्रदर्शित करे? काकासाहेब तो कर ही नहीं सकते थे। वे निश्चिंत रहे। पर उन्हें जो डर था, वही अंत में सही साबित हुआ। कृपलानीजी गुजरात छोड़ना नहीं चाहते थे। गांधीजी ने जब उनका यह आग्रह देखा तब उन्होंने पूछा, ''मैंने आपके लिए खादी का क्षेत्र चुनकर रखा है। तिस पर भी क्या आप गुजरात में रहने का आग्रह रखते हैं?''

कृपालानीजी काकासाहेब के पास आकर बोले, ''बापूजी का यह रुख तुम अगर जानते थे, तो तुमने मुझे पहले ही चेतावनी क्यों नहीं दी? एक मित्र के नाते तुम्हारा यह कर्तव्य था। तुमने मित्रधर्म का पालन नहीं किया।'' कृपालानीजी के दिल को बड़ा आघात पहुंचा। उन्होंने अपना करीब चौबीस वर्षों का हार्दिक संबंध समेट लिया।

काकासाहेब को इसका जिन्दगी भर भारी विषाद रहा। कृपालानीजी से भी अधिक नाराज स्वामी आनंद थे। काकासाहब का उनसे भी उतना ही पुराना संबंध था। दोनों के बीच इतना घनिष्ठ संबंध था कि दोनों एक दूसरे को 'तू' या 'तुम' कहकर पुकारते थे। स्वामी गुस्से के मारे आगबबूला हो गये और काकासाहब के पास आकर कहने लगे, ''तुमने विद्यापीठ की जिम्मेदारी सिर पर लेकर मित्रद्रोह किया है। यह जिम्मेदारी छोड़ दो। इसे लेने से इंकार कर दो।''

काकासाहब ने कहा, ''मैंने बापूजी को वचन दिया है। ''स्वामी और भी गुस्सा होकर बोले, ''बापूजी से पहले का हम तीनों का संबंध है।''

''मैं बापूजी को तो यह सब पहले बता दूं। उनकी इजाजत तो ले लूं।'' काकासाहेब ने जवाब दिय।

यह जवाब सुनकर स्वामी का गुस्सा शांत होने के बजाय और भी बढ़ गया। वे काकासाहेब से सारे संबंध तोड़कर उनसे उसी क्षण दूर हुए। उनसे बोलना छोड़ दिया। यही नहीं, नाथजी जैसे एक आध्यात्मिक पुरुष की सलाह से उनको अपने दिमाग से भी निकाल दिया। काकासाहेब के लिए गुजरात विद्यापीठ की जिम्मेदारी प्रारंभ से ही बहुत महंगी सिद्ध हुई। उनको अपने दो घनिष्ठ मित्रों को हमेशा के लिए खोना पड़ा।''

काकासाहेब की हिन्दी सेवा और वर्तमान में हिन्दी की दुर्दशा पर हिन्दी वालों पर रवीन्द्रभाई की बेबाक टिप्पणी काबिले गौर है। वह उस ऐतिहासिक भूल की मूलभावना को भी अभिव्यक्ति देती है :

गांधीजी की प्रेरणा से जिसे उन्होंने अपना जीवन कार्य बनाया था और जिसके लिए अपनी आयु के चौबीस वर्ष खर्च करके धन्यता का अनुभव किया था, उस राष्ट्रभाषा की दुर्दशा देखकर उन्हें दुख हुआ करता था। हमारे सिर पर न अंग्रेजों का राज रहे, न अंग्रेजी का, माता के चेहरे पर लगा हुआ यह राजनीतिक और सांस्कृतिक गुलामी का कलंक दूर हो और भारत-जननी एक हृदय हो, इस विराट संकल्प को लेकर उन्होंने इस कार्य का आरंभ किया था और दिन-रात काम करके बारह अहिन्दी प्रदेशों में हिन्दी के लिए अनुकूल वातावरण का निर्माण किया था। इन प्रदेशों में हजारों लोग उत्साह के साथ हिन्दी पढ़ते थे, हिन्दी का प्रचार भी करते थे। जब तक यह काम अहिन्दी लोगों के हाथ में रहा, तब तक वह अच्छी तरह से चलता रहा। पर इसमें ऐन मौके पर ऐसे कुछ अदूरदर्शी और अति उत्साही हिन्दी वाले कूद पड़े, जो एक तरह से साम्राज्यवादी बन गये थे। जिस तरह अंग्रेजी भाषा प्रांतीय भाषाओं को दबाकर अपना राज चलाती है, उसी तरह अब हिन्दी का प्रचार इस महत्त्वाकांक्षा से प्रेरित होकर वे करने लगे। इन्होंने राष्ट्रभाषा प्रचार कार्य को काफी नुकसान पहुंचाया।

हिन्दी वालों ने पहले इस तरह की कई गलतियां करके इन प्रदेशों में हिन्दी के लिए प्रतिकूल वातावरण बनाया और बाद में हिन्दी-उर्दू का झगड़ा चलाकर गांधीपक्ष को भी कमजोर कर दिया। विभाजन के साथ जब स्वराज्य आया, उनको लगा, अब तो उर्दू की बला हमेशा के लिए टल गयी। अब हिन्दी ही चलेगी। इस समय भी गांधीपक्ष के लोग प्रभावी थे। राजेन्द्र बाबू थे, जवाहरलालजी थे, जो अब भी हिन्दुस्तानी के समर्थक थे। उन्हें हराने के लिए हिन्दी वालों ने दक्षिण की मदद ली। दक्षिण के लोगों ने उन्हें मदद तो दी, पर एक शर्त पर—फिलहाल अंग्रेजी रहेगी, पंद्रह साल के बाद हिन्दी के बारे में सोचा जायेगा। एक तरह का यह एक पोस्ट डेटेट चैक था—यानी एक ऐसा चैक था, जिस पर पंद्रह साल के बाद की तारीख थी। हिन्दी वाले यह चैक लेकर संतुष्ट हो गये। उस समय भी वे अगर गांधीपक्ष के साथ रहते तो संभवतः अंग्रेजी का प्रभाव हट जाता और हिन्दी के पक्ष को बल मिलता। पर उर्दू के डर से वे इतने भयभीत हो गये कि हिन्दी के हित की बातें भी वे समझ नहीं पाते थे।

इन जीवनियों के अलावा रवीन्द्रभाई लिखित एक और पुस्तक है : 'गांधीयुग के एक जंगम विद्यापीठ में'। इसके माध्यम से उन्होंने काकासाहेब के क्रांतिकारी विचारों का प्रस्फुटन किया, उपनिषद परंपरा, संस्कृति के अनुसार गांधी-युग के योगदान और बीसवीं सदी में मानवजाति पर पड़े प्रभाव, वर्तमान और भविष्य के लिए गांधी-विचार की प्रासंगिकता और अनिवार्यता को बखूबी उकेरा है। काकासाहेब के साथ विविध विषयों पर वार्तालाप रूप में प्रस्तुत यह पुस्तक मूलतः मराठी में 'ज्ञाननिधिच्यां सान्निध्यांत' के नाम से प्रकाशित हुई। गुजराती में भी इसका अनुवाद प्रकाशित हुआ।

यह एक ऐसी पुस्तक है जिसके माध्यम से रवीन्द्रभाई ने काकासाहेब के मौलिक क्रांतिकारी विचारों को पाठकों तक पहुंचाने के साथ ही उन्हें उन्नीसवीं और बीसवीं सदी में घटित घटनाओं के आधार पर निर्मित विचार-

प्रसार की अंतरंग सैर करवा दी है। उमाशंकर जोशी के शब्दों में—''काकासाहेब क्रांतिकारी विचार रखने वाले हैं, उसका ख्याल उनकी किसी अन्य पुस्तक के बजाय इस पुस्तक पर से अधिक आयेगा।

इस पुस्तक के निमित्त काकासाहेब के बहुत से क्रांतिकारी मौलिक विचारों को एक साथ शब्दबद्ध करके सुलभ बनाने का श्रेय केलेकर को है। भाई केलेकर ने सोलह दिन वार्तालाप चलाया। गुजराती में 'सात' दिन का 'अठ (अष्ठ) वाडियुं' (अठवारा) होता है। केलेकर के इस उपनिषद का सोहल दिन का पखवाड़ा हुआ। योगानुयोग बुद्ध जयंती के दिन वार्तालाप के शतक के बाद का अंतिम मनका आता है। भाई केलेकर ने काकासाहेब को केन्द्र में रखकर उनकी मदद से आखरी सौ बरस की आधुनिक भारत की साधना समझने का प्रयत्न किया। काकासाहेब की व्यक्ति-प्रतिभा के अनेक पहलू हैं। उनमें विनोद भी बहुत है। भाई केलेकर विनोद रसिया हैं ही। सद्भाग्य से चर्चा शतक एक ही विचार तंतु पर यानी आधुनिक भारत की बुनियाद की साधना पर ही चला, इसलिए एक अत्यंत सुवाच्य और मार्मिक चिन्तन-पोथी हमें मिली।

क्या 'आधुनिक भारत' की ही साधना की बात इसमें है? पचीस सौ बरस के पहले की, उससे भी पूर्व की, नजदीक की और दूर की, साधनाओं की सजीव छाया भी उस पर बिछती देखने को मिलती है।

काकासाहेब और रवीन्द्रभाई के मध्य संपन्न इस वार्तालापमय पुस्तक के निम्नलिखित वर्णन से पाठक को इस पुस्तक के विषय तत्त्व की झलक मिलेगी—मैंने (रवीन्द्र केलेकर ने) पूछा, ''श्रीरामकृष्ण परमहंस का क्या योगदान है?''

काकासाहेब : ''रामकृष्ण में वह विवेकानंद ने आरोपित किया। इसमें विवेकानंद की नम्रता भी है और उनकी महानता भी है। रामकृष्ण में वह दृष्टि थी। वह तत्त्व था। लेकिन उसे तत्त्वज्ञान का या दर्शन का स्वरूप विवेकानंद ने दिया।''

मैंने पूछा, ''विवेकानंद की शक्ति किस बात में है?'' ''देश के साथ एक रूप होने में'', काकासाहेब ने जवाब दिया और आगे चलाया, ''विवेकानंद और गांधीजी दोनों संपूर्ण देश के साथ एकरूप हुए थे। इतनी छोटी उम्र में विवेकानंद ने कितना बड़ा काम किया था। जितना सोचता हूं, उतना ही उनके प्रति मेरा आदर बढ़ता है। उन्होंने जो भी कुछ किया, सब हिन्दू-धर्म में रह कर किया। उसको एक नया मोड़ दिया। अलग पंथ स्थापित नहीं किया। जिस काल में उन्होंने दुनिया पर और खास करके इस देश पर अपना असर किया उस काल का मैं एक युवक हूं। विवेकानंद से पहले देश किस तरह सोचता था और बाद में किसी तरह सोचने लगा, यह सारा परिवर्तन मैंने अपने जीवन में देखा है, अनुभव किया है।''

और एकएक अंतर्मुख होकर वे बोले, ''अंग्रेजों को इस देश से बाहर भगाने का प्रथम प्रयत्न हम लोगों ने 1857 में किया। लेकिन उस समय हम ठीक संगठित भी न थे और हमारा निश्चय भी पक्का न था। हमारा यह प्रयत्न बिल्कुल सामान्य न था। 'स्वतंत्रता-संग्राम' कहलाने जितनी उसकी तैयारी न थी। इसलिए हम हारे। हमारी यह हार वास्तव में नैतिक थी। इस परिस्थिति का पूरा फायदा अंग्रेजों ने लिया और अपने साम्राज्य की बुनियाद मजबूत की। उसके बाद देश के कुछ प्रतिष्ठित लोगों ने अंग्रेजी राज्य का प्रसन्नतापूर्वक स्वागत किया। उनके स्तुति-स्तोत्र भी गाए। एक मराठी कवि ने गाया है—'धरातलीं इंग्रजा सारिखा प्रभु नाहीं दुसरा'—इस धरती पर अंग्रेजों जैसा दूसरा कोई मालिक नहीं।

''हमारी अधोगति किस हद तक हुई थी, इसका और एक उदाहरण देता हूं—महाराष्ट्र में पेशवाई खत्म और अंग्रेजों का राज्य मजबूत हुआ। पेशवाई खत्म हुई तब विजय का आनंद मनाने के लिए अंग्रेजों ने दक्षिणा बांटी। यह दक्षिणा लेने के लिए कई वेद शास्त्रसंपन्न शास्त्री भी दौड़ कर गये थे। इतने हम हृदय से हारे थे। ऐसे आत्मगौरव खो बैठे राष्ट्र के सामने विवेकानंद ने आत्मविश्वास, स्वाभिमान, निर्भयता, त्याग, वैराग्य, निःस्वार्थ सेवा आदि आदर्श रखे और देखते-ही-देखते राष्ट्र की ग्लानि दूर की।''

मैंने कहा, ''उनके पहले वेदांत का प्रचार इस देश में बड़े-बड़े आचार्यों और संतों ने खूब किया था, लेकिन विवेकानंद के ही काम का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। इसका क्या कारण है?''

''उनके पहले धर्मजागृति का जो काम हुआ, सब ईश्वर-भक्ति, संतोष और नाममाहात्म्य, इतने में आ जाता है। विवेकानंद ने इन बातों के साथ तेजस्वी पुरुषार्थ, राजकीय अस्मिता, भौतिक ज्ञानोपासना और सामाजिक सुधार आदि बातों को जोड़ा। धर्मानुभव का आधार लेकर संस्कृति में नवजीवन आना चाहिए...शिक्षा में राष्ट्रीयता दाखिल करनी चाहिए...उद्योग बढ़ाकर लोगों की आर्थिक स्थिति सुधारनी चाहिए, वगैरह आग्रहों से युक्त जो सर्वांगीण जागृति इस देश में हुई, उसके अग्रदूत विवेकानंद थे।''

काकासाहेब के व्यक्तित्व के आकर्षण से वैसे तो अनेक स्वनामधन्य व्यक्ति उनसे जुड़े, जिनमें गिरधर कृपालानी, चन्द्रशेखर शुक्ल, जुगतराम दवे, पांडुरंग देशपांडे, श्रीपाद जोशी, उमाशंकर जोशी, सुंदरम् और रवीन्द्र केलेकर के नाम प्रमुख हैं। उनमें रवीन्द्रभाइ ही ऐसे विरले सौभाग्यशाली अंतेवासी हैं, जिन्होंने आजीवन अपने आचार्य की साहित्य-सर्जन परंपरा को समृद्ध किया और उनके विचारों के प्रचार-प्रसार की मौन साधना में भी सर्वाधिक योगदान दिया।

रवीन्द्र भाई ने आजादी के बाद के नवराष्ट्र में उपेक्षित प्रांतीय भाषाओं, विशेषरूप से कोंकणी भाषा की प्रतिष्ठापना और संवर्धन कुछ इस प्रकार से किया कि उससे न केवल प्रांतीय विशिष्ट सामाजिक संरचना में समरसता का संचार हुआ अपितु राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय फलक पर भाषाई अल्पसंख्यकों को पहचान व सम्मान भी मिला। ❑

बा-बापू : 150वीं जयंती पर विशेष

'बा' जुलू विद्रोह और कस्तूरबा

❑ गिरिराज किशोर

गांधीजी को लेकर एक बड़ा और चर्चित उपन्यास प्रस्तुत कर चुके श्री गिरिराज किशोर ने अब बा पर कलम उठायी है। बा पर कुछ भी लिखना बहुत कठिन था। नहीं के बराबर जानकारियां। 'पहला गिरमिटिया' की सामग्री जुटाने में उन्हें कोई दो हजार पुस्तकों से मदद मिली थी। और 'बा' उपन्यास लिखते समय मुश्किल से दो पुस्तकें सामने थीं। वे उन सब लोगों से मिले, जिन्हें कस्तूरबा के बारे में थोड़ी-सी भी जानकारी थी और उन जगहों पर गये, जहां बा ने थोड़ा या बहुत समय बिताया था। इस तरह बनी यह कथा, यह इतिहास बा के अलावा खुद बापू के दो और रूपों को भी सामने रखता है–पति और पिता का रूप। प्रस्तुत है 'बा' का एक अंश, जो बा-बापू : 150 के अवसर पर क्रमशः प्रकाशित हो रहे हैं। –सं.

10 अप्रैल, 1908 को खुशी का अवसर आया। हरिलाल के घर में एक सुंदर और स्वस्थ बच्ची ने जन्म लिया। दाई उपलब्ध न होने कारण दादी कस्तूरबा और रिश्ते की दूसरी महिलाओं ने प्रसव कराया। ऐसी ही स्थिति में इस बच्ची के चाचा देवदास

का प्रसव उसके दादा मोहनदास को कराना पड़ा था। दादी ने कितना विरोध किया था, पर वैसी ही मजबूरी तब थी जैसी उस दिन गुलाब की बेटी के जन्म के समय थी। कस्तूरबा को देवदास के जन्म का ध्यान आना स्वाभाविक था। पर वह इतनी उल्लसित थी कि उसे अभिव्यक्त के लिए शब्द नहीं सूझ रहे थे। सबसे बड़ी खुशी इस बात की थी कि गुलाब का पहला बच्चा बेटी थी। कस्तूरबा के चारों बेटे ही बेटे थे। बच्ची ने घर में बेटी की कमी को भर दिया था। गुलाब और हरि ने बच्ची का नाम रामी रखा था। जन्म के सप्ताह बाद जब मोहनदास फीनिक्स आये थे तो नामकरण संस्कार के दिन माता-पिता ने दादा की औपचारिक बधाई स्वीकार की थी। दादा ने रामी के काम में उसके नाम का पहली बार उच्चारण किया था।

लेकिन जब रामी के जन्म की खुशियां मनायी जा रही थीं तो पहिया उल्टा घूमा और पूरा परिदृश्य बदल गया। एक तार आया। सब सन्नाटे में आ गये। मोहनदास की इकलौती बहन रलियत के इकलौते बेटे गोकुलदास को मौत ने बेरहमी से छीन लिया था। गोकुलदास पिछली बार कस्तूरबा और मोहनदास के साथ आकर डरबन में रहा था। वह उन दोनों के लिए भी बेटा ही था। रलियत अकेली रह गयी थी, पति के जाने से साथ खाली हो गया था। बेटा ही एकमात्र सहारा था। अब बेटे के जाने से पेट खाली हो गया। गोकुलदास वहां की पढ़ाई खत्म करके सपत्नीक फीनिक्स आने की सोच रहा था। 14 अप्रैल को विवाह हुआ था, कुछ ही दिन बाद क्रिकेट खेलते हुए नाजुक अंग पर गेंद लगने से उसकी मृत्यु हो गयी थी। कैसा क्रूर संयोग था।

मोहनदास ने जनसेवा के क्षेत्र में गोकुलदास के भविष्य को लेकर बड़े सपने देखे थें इस हादसे के बाद मोहनदास को गहरी निराशा हुई थी। कस्तूरबा हरिलाल से मिलान कर रही थी। वे दोनों साथ-साथ बड़े हुए थे। हरिलाल पर भी इस घटना का गहरा असर हुआ था। कुछ सप्ताह के बाद हरिलाल ने तय किया कि जोहान्सबर्ग जाकर सत्याग्रह में भागीदारी करेगा। गुलाब और रामी कस्तूरबा की देख-रेख में रहेंगे। यह उसके जीवन का पहला हादसा और स्वतंत्र निर्णय था। कस्तूरबा ने उसके इस निर्णय में जरा भी हस्तक्षेप नहीं किया। गुलाब को जरूर लगा कि वह इतनी छोटी बच्ची को छोड़कर जा रहा है। पर चुप रही। कस्तूरबा जानती थी कि वह बापू की तरह दूसरों के दुःख के प्रति संवेदनशील है और ज़िद्दी भी। वह यह भी समझ रही थी कि हरि का यह फैसला मोहनदास को राहत और सांत्वना देगा। उन्हें लगेगा कि वह गोकुल की कमी पूरी करेगा जिसको लेकर वे जन सेवा का सपना संजोए थे।

मोहनदास खुश थे कि स्मट्स अपने वायदे के अनुसार काला कानून निरस्त कर देगा। भारतीयों को राहत मिलेगी। मोहनदास ने पंजीकरण के बारे में अपना वायदा पूरा कर दिया था। अधिकतर भारतीयों ने उनके समझाने पर पंजीकरण करा लिया था। लेकिन उधर से इतने दिन बाद भी अध्यादेश वापस लेने का कोई संकेत नहीं था। मोहनदास कई पत्र लिख चुके थे जब उन्होंने अपना वायदा पूरा कर दिया तो विलम्ब क्यों हो रहा है। वहां से गोल मोल जवाब आते थे या चुप्पी साध जाते थे। स्मट्स समझौते की शर्त के अनुसार अपनी भूमिका से बच रहा था। उल्टे

ट्रांसवाल संसद जख्मों पर नमक छिड़कने की तैयारी में थी। भारतीयों के साथ हुए गिरमिट के विरुद्ध उनके जाने-आने पर अंकुश लगाने की तैयारी कर रहे थे। उसका रास्ता रोकने के लिए मोहनदास के लोग सत्याग्रह की तैयारी में जुट गये थे। फलस्वरूप जेलें भरनी आरंभ कर दी थीं। हरिलाल ने बापू से अनुमति लेकर सत्याग्रहियों में अपना नाम लिखवा दिया था। उसका नतीजा यह हुआ कि बिना लाइसेंस लिए फल बेचने के आरोप में पकड़ लिया गया।

27 जुलाई को जब हरिलाल अदालत में पेश हुआ तो मोहनदास अदालत में मौजूद थे। हरिलाल ने निर्भीकता के साथ स्वीकार किया कि वह बिना लाइसेंस लिए फल बेच रहा था। अदालत ने उस पर पौंड का जुर्माना लगाया, उसके न देने पर एवज में सात दिन की सजा सुना दी। हरिलाल ने जुर्माना भरने से इनकार कर दिया। मोहनदास पहले व्यक्ति थे जिन्होंने हरि को गले लगाया और निर्णय के लिए बधाई दी। जब सात दिन की सजा काटकर बाहर आया तो उसे एक और परवाना पकड़ा दिया कि उसे सात दिन के अंदर ट्रांसवाल छोड़ना होगा। लेकिन उसने ऐसा नहीं किया। 10 अगस्त को हरिलाल को फिर गिरफ्तार कर लिया गया। उस रोज भी सुनवाई के समय मोहनदास अदालत के एक कोने में चुपचाप बैठे थे। हरिलाल ने अपने पक्ष में कुछ भी कहने से मना कर दिया। एक महीने की बामुशक्कत कैद की सजा सुना दी गयी। अदालत में उपस्थित सब लोग हरिलाल के इस फैसले पर चकित थे। लोगों ने देखा मि. गांधी के चेहरे पर मुस्कुराहट थी। कस्तूर को पता चला तो उसने गुलाब से कहा कि वह भी अपने बापू की तरह जिद्दी है। यह लड़ाई घर की लड़ाई से बड़ी लड़ाई है। हम औरतों का पति के इस तरह के निर्णयों को फलीभूत करने में, साथ देना धर्म बन जाता है।

...क्रमशः अगले अंक में

बिहार के गांधी लक्ष्मी बाबू : प्रेरक व्यक्तित्व

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद द्वारा शिलान्यास किये गये खादी भंडार, मुजफ्फरपुर के प्रांगण स्थित लक्ष्मीनारायण भवन में बिहार के गांधी कहे जाने वाले स्व. लक्ष्मीनारायण की 60वीं पुण्यतिथि मनायी गयी। यह आयोजन उनके पौत्र अजय नारायण ने संपन्न कराया।

बिहार खादी आंदोलन के इतिहास को समझना, लक्ष्मी नारायण को जाने बिना संभव नहीं होगा। वे बिहार खादी आंदोलन के अग्रदूत थे। आचार्य कृपलानी ने उन्हें 'अजातशत्रु' कहा था। लक्ष्मी नारायण का जन्म 1898 में बेगूसराय के उलाव स्टेट के धनाढ्य जमींदार परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम ईश्वरी प्रसाद था। ईश्वरी प्रसाद के परदादा बाबू मनसाराम अग्रवाल की जमींदारी मुजफ्फरपुर व अन्य कई जिलों में फैली थी। महाजनी और अपनी जमींदारी को सुचारू रूप से चलाने के लिए आपके दादा लालजी ने मुजफ्फरपुर के नई बाजार में एक हवेली बनवायी। लालजी को विद्रोहियों की मदद करने के कारण 1857 के गदर में भूमिगत होना पड़ा था। 1903 में ईश्वरी प्रसाद स्थाई रूप से मुजफ्फरपुर आ बसे।

बचपन से ही अपनी तेजस्विता के बल पर एम.एस.सी. की पढ़ाई उन्होंने की। पटना विश्वविद्यालय से 1918 में बीएससी केमेस्ट्री ऑनर्स में सर्वप्रथम रहे। एमएसएसी की पढ़ाई करते समय उन्हें 'इंडिपेंडेंट' पत्रिका पढ़ते देख एक अंग्रेज प्राध्यापक कॉडवेल ने नाराजगी व्यक्त की और जब पढ़ने से मना करने की चेतावनी दी तो पढ़ाई छोड़ वापस मुजफ्फरपुर लौट पड़े। घर वालों की दविश से वे कलकत्ता में एमएससी पढ़ाई करने 1919 में गये। वहां वे कांग्रेस की गतिविधियों में शमिल होने लगे और 1919 में जब गांधीजी ने 'असहयोग आंदोलन' का बिगुल फूंका तो वे पढ़ाई छोड़ वापस लौट पड़े। इस बात से घर वाले दुखी हुए, तो उन्होंने कहा—''जब पढ़ाई पूरी ही कर ली, तो देश के लिए त्याग क्या किया?'' 21 वर्षीय इस युवा ने फिर कभी मुड़कर नहीं देखा ओर आजीवन देशप्रेम में डूबे रहे।

आप 1919 में जिला कांग्रेस समिति के सदस्य चुने गये और कोष संभाला। इनकी ईमानदारी के कारण जब 1921 में 'तिलक स्वराज्य कोष' की स्थापना हुई, तब इन्हें कोषाध्यक्ष बनाया गया। 1922 में बिहार प्रांतीय कांग्रेस समिति ने खादी विभाग का गठन किया। इसके संचालन के लिए 5 सदस्यीय संचालन समिति बनी, जिसमें एक आप थे। इसी वर्ष दक्षिण-भारत के बेजवाड़ा में कांग्रेस ने 20 लाख चरखा-निर्माण और उसे चलाने के लिए एक करोड़ रुपये एकत्र करने का निर्णय लिया था, तब मुजफ्फरपुर के प्रभारी आपको बनाया गया। 1923 में अ.भा. खादी मंडल का गठन हुआ तो बिहार मंडल के प्रभारी आप ही बने। 1925 में कांग्रेस अधिवेशन में जिस अ. भा. चरखा संघ की नींव पड़ी, उसके प्रथम प्रांतीय प्रधानमंत्री आपको बनाया गया। इसके प्रभारी डॉ. राजेन्द्र प्रसाद थे।

गांधीजी द्वारा मैला ढोने की प्रथा के उन्मूलन की जब शुरुआत की तो श्री लक्ष्मी नारायण अपने घर कमाने वाला पैखाना-घर हटवाकर सेप्टिक टैंक वाला शौचालय बनवाया। आप आजीवन चिकनी मिट्टी से बनाया साबुन ही उपयोग करते रहे। खादी ग्रामोद्योग के पद पर रहते हुए उन्हें जो भी वेतन मिलता रहा, उसे परिवार वाले कभी नहीं जान पाये क्योंकि उस वेतन को खादी ग्रामोद्योग या भूदान कार्यों में खर्च कर देते थे।

चरखा संघ के विकेन्द्रीकरण की बात अक्टूबर 1946 में गांधीजी ने दिल्ली के अ. भा. संघ में रखी, तब लक्ष्मी नारायण के नेतृत्व में बिहार में विकेन्द्रीकरण की बात लिखित तौर पर गांधीजी को सौंपने वाले पहले व्यक्ति थे।

इस स्वावलंबी महापुरुष ने भूदान से जुड़ने के बाद पदयात्रा करके जमीन एकत्रित की थी और उसी कार्य करते हुए दरभंगा में पदयात्रा के दौरान अमर यात्री बने। आपकी मृत्यु 9 मई 1958 को हुई। स्वतंत्रता आंदोलन 1942 में ढाई साल की सजा काटने वाले देशभक्त—गांधी, राजेन्द्र प्रसाद, विनोबा—के परमप्रिय लक्ष्मी नारायण लोभ-लालच से दूर, अपने काम के प्रति लगनशील रहे। आपने किये गये कार्यों का कभी प्रचार-प्रसार की लालसा नहीं रखी और 'मरते-मरते करो' के अपने कथन पर अमल करते हुए दिवंगत हुए। श्रद्धांजलि! **–डॉ. वीरेन नंदा**

रवि भूषण पाठक की दो कविताएं

एक

ये देश हमारा-तुम्हारा नहीं,
हमारे-तुम्हारे पुरखों का नहीं
ये देश ईलम दास, जुलुम दास,
बिलमदास और चिलमदास का है
जिन्हें गद्दी चाहिए और
तिल-कुश के साथ देश भी
ईलम कहता है कि
उसके दादा-नाना मारे गये,
इसीलिए गद्दी उसकी
जुलुम के गुरु मरे पता नहीं
कौन सी बीमारी से,
कहां, कैसे, जुलुमबे जानत है
चिलम दास कहता है कि
उनके दादाओं को दबाकर
मारा गया, इसलिए
सो ये देश इनके झंडों, नारों और
अफवाहों के त्रिशूल पर लटका है
ईलम दास हारेगा तब भी,
घाव ऐसा ही रहेगा
बिलम दास हारेगा तब भी,
घाव की पपड़ी ऐसे ही रिसेगी
ईलम दास जीतेगा, तब भी,
दर्द की कोई इंतहा नहीं
बिलम दास के जीतने पर,
इस अंग में दर्द होगा
चिलम दास के जीतने पर उस अंग में
ईलम दास इल्म से दर्द देगा
जुलुम दास जुल्म से
इनकी भविष्यवाणियां,
नारे, योजनाएं एक ही होंगे
बस ये अलग-अलग जयंतियों पर
जनम लेंगे
उनके रोटियों, कपड़ों और
मकानों की गिनती एक ही होंगी
बस उसके रंग बदल जायेंगे
कोई सफेद में लिखेगा 'अभाव'
किसी का ठस्स केसरिया प्रभाव
वे पूरे देश में फैल जायेंगे,
आपस में बांट लेंगे
उनका झारखंड होगा,
जादूगोड़ा होगा, यूरेनियम भी होगा
हमारे विकिरण होंगे, कैंसर और
श्मशान होंगे
उत्तराखंड, छत्तीसगढ़ के सारे जंगल
जड़ी-बूटी, शिलाजीत उनके होंगे
पीठों पर निशां-ए-बेंत,
नीचे बांस के घाव हमारे होंगे
हरियाली उनकी सामर्थ्य उनका,
उपलब्धियां उनकी होगी
बंजरता हमारे कारण,
अशक्तता हमारी होगी।

दो

मुझे कभी भी जमा नहीं
भाईचारा शब्द
पर ज्योंहि तुमने गाली दी तुर्कों को
मुझे अजान मुबारक लगने लगा
मेरा कभी भी
बंधुत्व में विश्वास नहीं रहा
पर तुमने यहूदियों को
धोखेबाज कहा और मुझे दिख गये
आइंस्टीन नसीहत देते
सहिष्णुता तो दो टके का भी
चीज नहीं
पर अपनी सांस्कृतिक
गरीबी के लिए जब भी हुए
तुम ईसाईयों से नाराज
फादर कामिल बुल्के
रामकथा को सींचते दिखे
मुझे भी तुम्हारी ही तरह
अनेकता के लिए
घुट्टी पिलायी गयी है
मुझसे भी गैर-बराबरी का
माला फेरवाया गया है
कहा गया कि मत पड़ो
फेर में कान्यकुब्ज
कुलंगारों के
तभी दिख गये निराला
आते हुए लंबी बाहों को फैलाये
हमारी पूरी तैयारी थी
उर्दू को जमींदोज करने की
ज्योंहि लश्कर शामियाने
तक पहुंची
प्रेमचंद और शमशेर बैठे थे
वहीं दरी पर
तुमने कहा साहित्य और
पुस्तकालय जरूरी है
हमने जिम जाना शुरू कर दिया
ये बीमारी है कि ईलाज
शायद मैं व्यक्ति को
तर्क से नहीं चरित्र से
देखता हूं
अरे तर्क की खेती तो
मूंग की खेती है
पर चरित्र का बिया
एक दिन में नहीं अंकुरता ❑

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए महामंत्री, शेख हुसैन द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी से मुद्रित। संपादक : अशोक मोती।